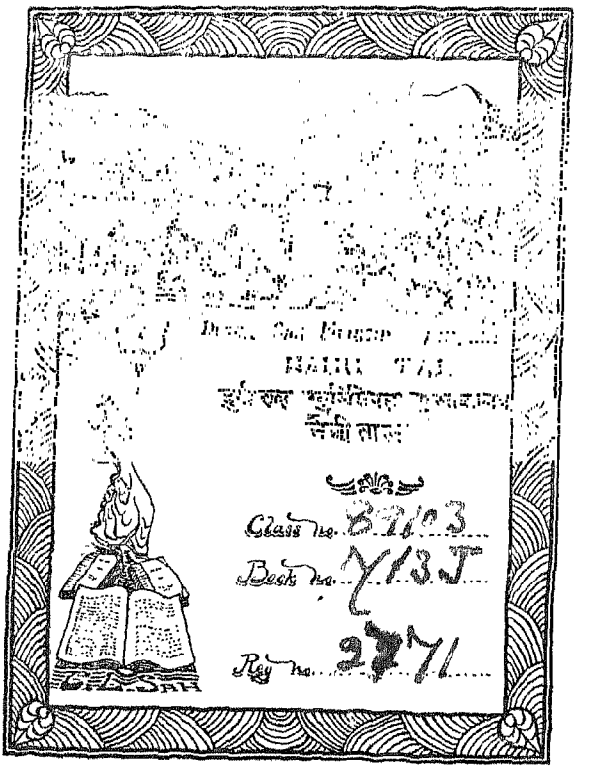

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

Class no. 891.03
Book no. Y13J
Reg no. 2771

प्राप्ति स्थान

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।

झुनिया की शादी

लेखक की अन्य रचनाएँ

प्रबन्ध सागर—यह उच्च कोटि के साहित्यिक, कलात्मक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा विविध विषयों पर विद्वतापूर्ण लिखे गये निबन्धों से युक्त बी० ए०, हिन्दी प्रभाकर, मध्यमा तथा अन्य विशेष योग्यता की परीक्षाओं के लिए उपयोगी पुस्तक है। —मूल्य ५॥)

आदर्श पत्र-लेखन—यह व्यक्तिगत, व्यावहारिक, निजी तथा व्यापारिक पत्रों का भावनात्मक, कथात्मक तथा विचारात्मक संग्रह है। हिन्दी में अपने ढंग का यह एक अकेला ही ग्रन्थ है। —मूल्य ७॥)

आलोचना के सिद्धान्त—बी० ए०, प्रभाकर तथा विशेष योग्यताओं के विद्यार्थियों के लिए आलोचना-सम्बन्धी नियमों के स्पष्टीकरण की यह सुन्दर तथा सरल पुस्तक है। —मूल्य २।)

उपन्यास

इन्सान—भारत-विभाजन और उसके बाद की परिस्थितियों पर कलात्मक प्रकाश डालने वाला सामाजिक उपन्यास। यह उपन्यास यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत भी किया गया है। —मूल्य ४)

अन्तिम चरण—कांगरेसी सरकार के शासन-काल में समाज के अव्यवस्थित ढाँचे और घूसखोरी का सजीव चित्राङ्कन इस उपन्यास में चित्रित है। —मूल्य ७॥)

निर्माण-पथ—यह उपन्यास भारत के मजदूर और पूंजीवादी दृष्टिकोणों को सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत करता है। —मूल्य ४)

महल और मकान—भारतीय उद्योगों के समाजवादी दृष्टिकोण का बहुत ही रोचक तथा कलापूर्ण चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। —मूल्य ३)

बदलती राहें—जमींदारी की दीवार का गिरता और समाजवादी दृष्टिकोण का उभरता हुआ चित्र इस उपन्यास में मिलेगा। —मूल्य ३)

मधु—अंगरेजी शासन काल में वेश्यावृत्ति के व्यवसायीकरण के इस उपन्यास में खूब परखचे उड़ाये गये हैं। —मूल्य ३)

इन्साफ़—जमींदारी समाप्त होने पर भी एक जमींदार द्वारा अपने इलाके के काश्तकारों को पीस डालने की रोमांचकारी कहानी—मूल्य ३)

झुनिया की शादी

भारतीय समाज में नारी और उसके जन्म से पैदा होने वाली आर्थिक समस्या की रोमांचकारी गाथा।

यज्ञदत्त शर्मा

प्रकाशक

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन,
दिल्ली

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक
रामा कृष्णा प्रेस,
कटरा नील, दिल्ली।

झुनिया की शादी

: १ :

एक ओर प्रसन्नता और दूसरी ओर चीख पुकारों की कराह, विचित्र सम्मिश्रण था, परन्तु दुनियाँ के घर-घर में यह सम्मिश्रण सृष्टि के आदिकाल से होता चला आया है। एक परेशानी, एक आशा, एक उमङ्ग, भाग-दौड़, काना-फूँसी,—यह सभी कुछ तो चलरहा था, अपने स्वाभाविक प्रवाह के साथ, आज दातादीन के घर में। रमधनिया की सास भी लवड़-झवड़ इधर-उधर भाग रही थी। रमधनिया का ससुर बाहर चबूतरे पर किसी शुभ समाचार के पाने की इच्छा से कान पसारे बैठा था; हुक्का पी रहा था अपने चन्द साथियों के साथ, परन्तु मन और मस्तिष्क घर से ही बँधे थे। कुछ सुनना चाहते थे कान।

रमधनिया का ससुर दातादीन मेहनती किसान था, जिसने पचास वर्ष तक हड्डियों को पेल-पेल कर किसी-तरह हजार-बारह सौ रुपया जमा किया और अपनी गृहस्थी की दशा को सुधारा, परन्तु फिर उसके सामने अपने परिवार की वंश-बेल को आगे बढ़ाने और पल्लवित करने का प्रश्न आखड़ा हुआ। रौब-दौब से काम नहीं चला, बिरादरी की ब्याह शादियों में, इधर-उधर की छोटी-मोटी सभाओं और पञ्चायतों में बन-ठन कर जाने का नाटक भी असफल सिद्ध हुआ,—चन्दू का रिश्ता लेकर कोई न आया,—तो दातादीन को लगा कि बस उसकी वंश-बेल सूखी और उसका चन्दू कुआरा ही रहगया। यह विचार मन में आता तो दातादीन का कई पली खून सूख जाता,

दिल बैठने लगता और दुनियाँ सूनी-सूनी जचने लगती। उसे लगता कि मानो वह दुनियाँ में व्यर्थ आया, अपना फर्ज भी पूरा न कर सका। कभी-कभी जब वह गर्व के साथ अपने जीवन की करामातों पर दृष्टि डालता था तो उमङ्गों में फूल उठता था, उसकी छाती चार इञ्च चौड़ी हो जाती थी,—उसने अपनी मेहनत से मकान बनाया था, बैठक बनाई थी। यह काम उसके बुजुर्ग नहीं करसके थे। परन्तु आज उसकी हिम्मत पस्त थी, उसका साहस नष्ट हो चुका था और उसे अपनापन अपने उन बुजुर्गों के सामने बहुत ही हीन-सा जच रहा था कि जो कम से कम दातादीन की शादी तो कर सके। दातादीन चन्दू की शादी नहीं कर पारहा था।

परन्तु दातादीन चन्दू की शादी अवश्य करेगा,—यह उसका दृढ़ संकल्प था। जायदाद पर कर्ज करना पड़े, अपने जीवन की कमाई हुई सारी सम्पत्ति चाहे इस कार्य पर न्यौछावर कर देनी हो, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं।

आखिर दातादीन ने अपनी मनचाही करके ही दम लिया। जो टके पास में थे उनमें साहूकार से कुछ रुपया अपनी जमीन जायदाद, घर-बार, बैलगाड़ी, भैंस इत्यादि असासे पर कर्ज लेकर मिला लिया और निकल पड़ा चन्दू के लिए बहू खोजने। बहू उसे मिल गई,—बहुत जल्द, सौदा निश्चित होगया। दातादीन मानो एक गाय खरीदने के लिए निकला था और वह उसे दो हजार पाँचसौ रुपये में मिलगई। चार बिरादरी के आदमियों, भाई बन्धुओं में बात हुई। कुछ ने सौदा महँगा और कुछ ने सस्ता बताया। कुछ ने इस प्रकार विवाह करने की आलोचना की, कुछ ने 'चलो घर बस गया' कहकर प्रसन्नता जाहिर की और इसी तरह हजार मुँह से हजार बातें निकलीं, परन्तु उन सबका दातादीन पर कोई प्रभाव नहीं था। उसे अपने चन्दू का विवाह करना था और वह उसने किया,—खूब धूम-धाम के साथ किया,—खूब गाजे-बाजे के साथ किया,—खूब भाई

बिरादरी की जौनार के साथ किया,—सब भाई घर पर आये,—किसी की नाक आखरी दम तक चढ़ी रही,—किसी ने हँस-दौड़ कर प्रसन्नता के साथ भाग लिया, परन्तु दातादीन ने इस शादी में भरसक बिरादरी और भाई-बन्धुओं को प्रसन्न ही रखने का प्रयत्न किया। बेटे के विवाह की प्रसन्नता पर अपने आत्मसम्मान को उठाकर बालाएताक रख दिया; सबकी सुनी और सबकी सही।

आज उसी विवाह का फल दातादीन के परिवार को भगवान् प्रदान करने वाले थे और दातादीन हृदय में उमङ्ग लिये, मन-ही-मन भगवान् की ओर टकटकी लगाये बैठा था। पोते के दर्शन करने की उत्कट इच्छा हृदय से उमड़ी पड़ रही थी। बार-बार खाट से उठकर खड़ा होजाता था दातादीन। आखिर जब न रहा गया, तो वह अपनी चादर कन्धे पर डाल, बिना किसी से कुछ बोले, घर की ओर होलिया।

घर पहुँचा तो बाहर दुबारी में ही रुक गया। कच्ची दुबारी, दालान और कच्चा कोठा, बस यही था दातादीन का कुल मकान। इशारे से चन्दू की माँ को बुलाकर धीरे से पूछा,—"सब ठीक है न!"

"क्यों ठीक को क्या होगया है? कोई नई बात है क्या? चिलत्तर-बाजी मचाई हुई है।" सास ने मुस्करा कर दातादीन के सामने हल्की-सी हँसी होठों पर लाकर कहा। "खामखा आजाते हो औरतों के कामों में भी अपनी टाँग फँसाने।"

दातादीन अपनी स्त्री से यह मीठी फटकार सुनकर, उलटे ही पैरों लौट कर फिर चौपाल पर पहुँच गया, परन्तु उसका मन पोते में ही अटका हुआ था। वह उसकी शीघ्रातिशीघ्र आने की प्रतीक्षा कर रहा था, लालचभरी आकांक्षाओं तथा स्वप्नों को लेकर।

रमधनिया की सास भाग-दौड़ तो काफी कर रही थी परन्तु उसका ध्यान रमधनिया की परेशानी की ओर तनिक भी नहीं था। यह उसकी नज़र में कोई परेशानी ही नहीं थी। कोई बीमारी तो थी नहीं, जिसका वह उपचार करने की सोचती। प्रकृति के साधारण नियमों

में वह भला क्यों हस्ताक्षेप करे। चार घड़ी का चीखना-चिल्लाना था,—सो कोई विशेष बात नहीं थी। वह भी प्रतीक्षा कर रही थी अपने पोते को एक नजर देखने की, गोद में खिलाने की और अपने चन्दू की वंश-बेल को अपनी आँखों के सामने नई पीढ़ी में पदार्पण करतेहुए देखने की।

रमधनिया परेशान थी। कोई पास बैठने वाला भी ढङ्ग से नहीं था। यह उसने सुना अवश्य था कि प्रसव-वेदना बड़ी भयङ्कर होती है परन्तु आज उसका विकराल रूप उसके सम्मुख था, मानो एक बालक को जन्म देने में उसके अपने प्राण शरीर से निकले जारहे थे। तमाम शरीर काँप रहा था, रोम-रोम तनकर सतर होगया था और बदन से पसीना छूटरहा था; एक अजीब परेशानी थी। सास के भय से अपनी पीड़ा को वह अन्दर-ही-अन्दर समेट लेने का प्रयास करती,—पर कहाँ; वह तो इतनी प्रबल थी, कि बार-बार मुख से अनायास ही चीख-सी निकल जाती थी। महान् कष्ट, परन्तु पुत्र की आशा ही रमधनिया के इस महान् कष्ट में एक आलम्बन थी, एक सहारा थी, एक आश्वासन थी, एक कल्पना थी.....स्वर्ग की कल्पना, सुख की कल्पना, बेटे की कल्पना, जीवन की कल्पना।

बेटा.....पोता.....बेटा.....पोता.....बस यही मनोकामना घर के वातावरण में आच्छादित थी। 'अपने मन कुछ और है, विधना के मन और' वाली कहावत पर किसी का ध्यान नहीं था। गाँव की बूढ़ी दाई आई और उसने रमधनिया को शब्दों का आश्वासन दिया, बल दिया और वास्तव में उसे सहारा-सा मिलगया। बूढ़ी दाई के प्यार-भरे शब्दों ने मानो रमधनिया के पकेहुए चीसते फोड़े पर मरहम लगा दिया, उसकी वेदना को कम करदिया।

संध्या को लगभग तीन बजे सन्तान की उत्पत्ति हुई,—आनन्द और हर्ष एक क्षण में ऐसे समाप्त होगया मानो साँप काटे का विष सब घर-वासियों के शरीर में फैल गया हो। दूध के उफान पर पानी का

छींटा लगगया । रमधनिया की दशा ऐसी थी मानो विधाता ने उसे नौ महीने आस दिखलाकर उसका कुछ फल देने के स्थान पर उल्टा वंचित ही जसे किया हो, अपमानित ही उसे किया हो । उसे किसी दीन का न छोड़ा विधाता ने,—उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया । उसका गान, उसका उत्साह, उसकी उमङ्ग, उसकी आशाएँ, उसके स्वप्न,—सब विलीन होगये एक दुराशा की काली छाया में ।

रमधनिया के गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति न होकर आज कन्या ने जन्म लिया ।

दातादीन और चन्दू की माँ के मस्तकों पर सलवटें पड़गईं । एक कर्ज सिर पर आकर लदगया । अपनी जीवनभर की कमाई और बाप दादों की सम्पत्ति गिरवी रखकर जो विवाह किया उसका यह फल निकला । दोनों ने मिलकर अपने भाग्य को कोसा और फिर तनिक सतर्क होकर यह निश्चय किया कि इस लड़की को यहीं पर समाप्त कर देना उचित होगा । उन लोगों की आर्थिक दशा पहले ही काफी खराब होचुकी थी, यदि उसपर यह भार और उनके सिर आगया तो उन्हें दो-दो दाने के लिए मुहताज होजाना पड़ेगा । फिर यदि उसका विवाह बिरादरी में नाक रखकर न कर पाये तो हमेशा के लिए घर की आबरू भी मिट्टी में मिल जायगी ।

जब दाई अपना काम समाप्त करके जाचुकी तो रमधनिया की सास कोठे में गई और बहू से उस नन्हीं बच्ची को अपने हाथों में लेकर उसकी जीभ से कुछ लगा दिया । फिर चुपके से बाहर निकल आई । दातादीन कोठे के बाहर ही खड़ा इन्तजार कररहा था । बाहर आने पर धीरे से पूछा,—"चटा दिया ।"

"हाँ ।" स्त्री ने कहा; परन्तु उसका बदन काँप रहा था ।

"काँप क्यों रही हो चन्दू की माँ ?" दातादीन ने तनिक घबराहट से पूछा ।

"काँप तो नहीं रही....." कहती-कहती वह चुप होगई, परन्तु

दातादीन को लगा कि उसकी आत्मा को अवश्य इस कार्य से ठेस लगी थी, पीड़ा पहुँची थी।

दातादीन का दिल मजबूत था। अपनी लाठी हाथ में लिए वह घर से निकला तो बुड़बुड़ाता जारहा था,—'मैंने पाप किया,—बस यही तो कोई सुननेवाला कहेगा। लेकिन आज का यह पाप उस पाप से कहीं अच्छा है जब अठारह-बीस साल तक उसे सर्दियों में ठिठुरता और गर्मियों में सूर्य की तीखी किरणों में जलता-भुनता देखकर भी मैं काफी कपड़ा उसके लिए न जुटा सकूंगा,—और वह भी अगर किसी तरह जुटा लिया तो फिर.....फिर क्या होगा शादी के समय ? टीका देना होगा, दहेज देनी होगी, छूछक देने होंगे, भात भरने पड़ेंगे एक सिलसिला बन जायगा देनदारी का। मानो दातादीन पिछले जन्म में यह सब कर्ज लेकर आया था। इनमें से किसी को भी पूरा न कर सका तो बिरादरी में नाक कटेगी.....नाँ...भाई....नाँ मुझे यह पाप करना मञ्जूर है, परन्तु अपने चन्दू के रास्ते में काँटा बोना मञ्जूर नहीं',—और दातादीन दृढ़ था, जो कुछ उसने किया उसे वह ठीक समझता था, उसमें उसकी आत्मा की गवाही थी, उसके विचारों का बल था।

उधर सास के कोठे से बाहर निकालते ही रमधनिया ने छोटी बच्ची को सँभाला और पास पड़े किसी कपड़े को अपनी उँगली पर लपेटकर उसका मुँह हलक तक साफ कर दिया। यह कार्य उसने बड़ी ही चतुराई से किया। अपनी सास को बच्ची की जीभ पर कुछ लगाते उसने देखा था। फिर बूढ़ी दाई चलते समय रमधनिया से कह भी गई थी, 'बेटी ! बच्ची का ध्यान रखना। इस गाँव में लड़कियों को पैदा होते ही मार डालने की प्रथा है।' रमधनिया का शरीर पानी-पानी होगया था यह सुनकर और जब उसने अपनी आँखों से अपनी सास को बच्ची की जीभ से कुछ लगाते देखा तो वह समझगई गया कि वह अवश्य कोई विष था जो बच्ची को दिया गया।

रमधनिया की सास ने यह कार्य किया तो अवश्य परन्तु उसकी आत्मा में एक ग्लानि-सी उत्पन्न होगई । यों स्वभाव की वह बहुत कर्कश थी,—बहू पर चौबीसों घण्टे डायन की तरह सवार रहती थी,—वह समझती कि रमधनिया एक बाँदी थी, जिसे उसका पति उसके लिए खरीदकर लाया था,—पर उस बच्ची का मुँह बारबार उसकी नेत्रों की पुतलियों में उतर आता था जिस अनजान की जीभ पर आखे का दूध लगाकर उससे इस सन्सार में रहने का अधिकार वह छीनने का प्रयास कर चुकी थी । उसके दिल में एक जलन-सी पैदा होने लगी । दातादीन पर कुछ क्रोध भी आया, परन्तु फिर तुरन्त ही दातादीन की लाचारी उसकी आँखों की पुतलियों में झूल उठी । चन्दू कुछ करता नहीं, कमाता नहीं, दिन भर दोस्तों में बैठकर गप्पें लगाता था, या ताश खेलता और गुलछरे उड़ाता और पिलना पड़ता था बेचारे दातादीन को । आखिर दातादीन की भी तो हड्डियाँ फौलाद की बनी हुई नहीं थीं । कहाँ तक काम देतीं ? पहले ही इस गृहस्थी पर कौन कम खर्चा था जो इस नई देवी का भी भार हँसकर गृहण कर लिया जाता ।

रमधनिया की सास को रह-रह कर रमधनिया पर ही क्रोध आरहा था । उसे दीखा कि मानो इस घर के सर्वनाश की बस वही एक कारण थी । अपना सब कुछ खोकर उसे लाये और उसने जन्म दिया उस कन्या महारानी को । उसे लगा कि मानो वह लुट गये । हीरे के धोखे में उनके हाथ पत्थर ही लगा । अब यदि उसने इसी प्रकार और दो-चार कन्याओं को जन्म दिया तो पोते का मुख देखना तो दूर की बात रही उल्टा बार-बार कन्याओं को मारने का पाप और सिर पर लेना होगा । इसी दुराशा से उसका शरीर काँप उठा ।

कुछ देर पश्चात् वह रमधनिया के कोठे में गई और बच्ची को टटोल कर देखा, उसकी नासिका के श्वाँस-प्रवाह के सम्मुख उँगली रखकर देखा, बच्ची जीवित थी,—मरी नहीं थी । बाहर निकाली तो

दातादीन दुवारी में खड़ा था,—अन्दर आकर धीरे से पूछा,—"क्या हुआ?"

"अभी कुछ नहीं। साँस चलरहा है। मरी नहीं।"

"तब जरूर कुछ दाल में काला है। तेरे कोठे से बाहर निकलने के बाद बहू ने उसका हलक साफ कर दिया होगा। तू जाकर दुवारा दे आ न!" झल्लाकर दातादीन बोला, "इस घर में सब मेरे ही खून के प्यासे हैं। दातादीन का खून सब को मीठा लगता है।"

परन्तु रमधनिया की सास कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों के सामने बच्ची की सुन्दर आकृति नाच रही थी, कितनी मनोरम थी वह। सोचा 'चन्दू के पश्चात् वही तो एक बच्चा इस घर में जन्म लेकर आया था और उसी के साथ यह व्यवहार। भला भगवान् भी क्या कहेगा। सब अपने-अपने भाग का लाते हैं। जरा सी बच्ची क्या सिर पर चढ़ती है अभी से।'

"जरूर तेरी ही कुछ साजिश है इसमें।" कड़क कर दातादीन ने कहा।

"हाँ मेरी ही साजिश है। मैं अभी बच्ची को तेरे हाथों में लादेती हूँ। गला घोंट दे न उसका। बात ही कितनी है। तेरे कहने से मैंने एक बार पाप कर लिया,—अब नहीं बनता।"

"नहीं बनता।" कड़क कर लाठी का ठोक जमीन पर मारते हुए दातादीन ने कहा, "नहीं बनता तो ला, मैं ही इसे खतम किये देता हूँ।"

रमधनिया की सास ने कोठे में जाकर बच्ची को रामधनिया के पास से उठा लिया और रमधनिया कुछ न कह सकी। वह बेजबान थी, लाचार थी, परवश थी,—अपनी बच्ची के प्राण बचाने का भी उसे अधिकार नहीं था। बच्ची को उठाकर दातादीन के हाथों में देदिया गया। दातादीन की दृष्टि ज्यों ही इस सुकुमार खिलौने पर गई तो उसे चन्दू का बाल-रूप स्मरण हो आया। हृदय में प्रेम-भावना कुलमुलाने लगी। एक क्षण वह उसी प्रकार बच्ची को हाथों में लिए खड़ा रहा

और अन्त में उसने बच्ची को ऊपर उठाकर अपनी लम्बी-लम्बी मुँछें उसके छोटे से मुख पर छितराते हुए धीरे से चूम लिया। वह बोला एक शब्द नहीं। बच्ची को ज्यों-का-त्यों अपनी स्त्री के हाथों में देकर सिर नीचा किये, घर से निकल गया।

पास-पड़ौस की औरतों का आना प्रारम्भ हुआ। सबने अपने-अपने मन की बात कही। किसी ने खुले और किसी ने दबे शब्दों में इस गृहस्थी के दुर्भाग्य पर हल्के-हल्के छींटे कसे और किसी ने 'भगवान् की देन' कहकर कन्या को वरदान भी दिया, परन्तु आज के वातावरण में प्रसन्नता की अपेक्षा सहानुभूति का ही साम्राज्य था।

रमधनिया की सास ने सभी पास-पड़ौसिनों से बातों के दौरान में इतना ही कहा,—"बहन! भगवान् ने जो दिया है हमने तो उसे ही प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लिया। भगवान् की दृष्टि से तो पोता और पोती सभी बराबर हैं।"

सभी गाँव की स्त्रियों ने रमधनिया की सास के साहस की सराहना की। अभी-अभी चन्द मिनट पूर्व इस घर में जो काण्ड हुआ था उसकी कानों-कान भी सूचना किसी को न मिल सकी।

रमधनिया की बच्ची उसे वापस मिल गई। उसने उसे प्यार के साथ छाती से चिपका लिया और अचानक ही उसके नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह निकली। अकेले में न जाने कितनी देर तक वह फूट-फूट कर रोती रही। उसका हृदय बार-बार भर-भर कर आता था और हृदय के उद्गार नेत्रों के द्वार से आँसू बनकर निकल जाते थे। एक ज्वाला जल रही थी उसके हृदय में। परन्तु इस महान् पीड़ा और परेशानी में भी जब वह उस कोमल सुकुमार अनजान-सी बालिका पर दृष्टि डालती थी तो मानो उसकी सम्पूर्ण पीड़ा एक क्षण में काफूर हो जाती थी। उसे लगता कि मानो उसने अपना सर्वस्व देकर कुछ प्राप्त किया था; अपना उत्तरदायित्व निभाया था,—जन्म दिया था एक बच्चे को और अब उसका अपना जीवन उस बालिका के ही निमित्त था। बच्ची

को प्यार से उठाकर अपने होठों से लगाते हुए रमधनिया ने अपनी व्याकुलता के वातावरण में भी एक स्वर्णिम कल्पना का साम्राज्य रच लिया,—एक सुनहली दुनियाँ बसा ली।

वह फूल-सी सुकमार बालिका, कलिका जो अभी ऊपर की पंखड़ियों से भा मुक्त नहीं होपाई थी,—रमधनिया के पास लेटी थी। वह विकसित होगी, खिलेगी, खेलती कूदती फिरेगी, दुख-सुख में अपनी माँ का हाथ बँटायगी,.....और न जाने कितनी कल्पनाएँ रमधनिया के मस्तिष्क में छाती चली जारही थीं। वह भूलगई प्रसव-वेदना को इस बालिका को पाकर।

: २ :

रमधनिया को उसकी बच्ची,—उसके दिल का टुकड़ा, तो मिल गया परन्तु वह मान, वह यश, वह गौरव प्राप्त न हो सका जो बेटे की माता को प्राप्त होता । उसका व्यक्तित्व यहीं से दब गया, झुक गया। उसमें कमजोरी आगई। उसमें से उभर कर चलने की प्रवृत्ति नष्ट होगई । परन्तु साथ ही एक जिम्मेदारी की भावना ने आज प्रथम बार उसके जीवन में झाँका और उसे दिखाई दिया कि उसे कुछ करना होगा।

रमधनिया की बच्ची को सास-ससुर ने रख्ख दिया,' मानो यही उसपर जाने कितना बड़ा उपकार था। बच्ची के लिए उनके हृदय में दया का अंकुर भी कुछ-कुछ उग आया, परन्तु रमधनिया के प्रति उनके क्रोध की मात्रा कम नहीं हुई। दातादीन, जो पहले काठ से भी अधिक कठोर था, अब थोड़ा झुक गया था, और रमधनिया की विवशता पर उसे सहानुभूति भी थी, परन्तु रमधनिया की सास का पारा हर समय चढ़ा ही रहता था। रमधनिया की सास को गर्व था अपने जीवन की सफलता पर, उसने पहली ही बार में चन्दू को जन्म दिया था, पुत्र पैदा किया था। एक कन्या को जन्म देने वाली साधारण खरीद कर लाई हुई स्त्री से उसका मुकाबिला ही क्या था ?

दस-बीस दिन में रमधनिया रिंगड़-रिंगड़ा कर आप ही खड़ी होने लगी। इस बीच में बेचारी का समय पर कुछ खाने-पीने का भी प्रबन्ध

न बन सका । जो थोड़ा-बहुत, सेर दो सेर, घी बेटा होने पर उसे खिलाने के लिए जोड़ा गया था, वह अन्न उसे खिलाना सास ने व्यर्थ समझा,—अपने मालिक और बेटे को ही खिला दिया । रमधनिया को एक ओर तो बच्ची को दूध पिलाना होता था और दूसरी ओर उसके स्वास्थ्य की दशा दिन-प्रति-दिन गिरती जारही थी । कई दिन से कुछ न खाने के कारण वह बहुत दुर्बल होगई । उठ नहीं सकती थी, बैठ नहीं सकती थी, खाट से लग गई बिलकुल ।

रमधनिया के पड़ोस में रामू की बेटी मुनिया, जिसने अपनी सास के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर अपनी सुसराल को ही तिलाञ्जलि देदी थी, रमधनिया की यह दशा कई दिन से देख रही थी । परन्तु उसकी सास के स्वभाव को जानते हुए कभी उधर नहीं गई थी । आज वह न रोक सकी अपने को । जो व्यथा इस समय रमधनिया पर पड़ रही थी, बिल्कुल वही उसके ऊपर से गुजरचुकी थी । रमधनिया की सास मुनिया की खान-दान के रिश्ते में ताई लगती थी । मुनिया रमधनिया के पास जाकर कुछ देर बैठी, उसके दुख-दर्द की बातें कीं,—रमधनिया को मानो मुनिया के रूप में भगवान् मिल गया । डूबते को तिनके का सहारा मिला । निराश्रित एक आश्रय पागया । उसे जरूरत थी सहारे की ।

"बहू कुढ़ना व्यर्थ है । तू प्राण भी दे देगी, तब भी ताई के कान पर जूं रेंगने वाली नहीं ।" मुनिया ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

रमधनिया चुप रही, एक बात भी उसने अपनी सास के विरुद्ध न कही । दिल में उसके प्रचण्ड ज्वाला जल रही थी, परन्तु होठों पर उसके एक शब्द न आया । उसने अपने सूखे होठों पर मुस्कराहट लाकर धीरे से कहा,—"ननदजी ! मेरे भाग्य का दोष है । दोष किसका कहूँ और किसके भरोसे पर कुढ़ूँ-न-कुढ़ूँ; एक आधारविहीन औरत हूँ, जिसके पास माँ, बाप, भाई, बहन, पति किसी का भी कोई सहारा नहीं, भरोसा नहीं । सास ससुर कम-से-कम खाना तो देरहे हैं, कपड़ा तो देते है ।"

झुनिया बहू के विचारों को सुनकर दङ्ग रहगई। उसने उसकी दयनीय दशा का चित्र अपने नेत्रों के सामने खिचा हुआ पाया। मुनिया को अभिमान था अपने पिता पर,—इसीलिए तो वह सास, ससुर और पति पर नखरा तौल कर अपने पीहर चली आई थी। किसी की क्या मजाल थी जो उसे रोक सकता? सास तरसती थी आज बहू के दर्शनों के लिए। चुड़ापे में अपने हाथ से रोटियाँ जो ठेकनी पड़ती थीं। बैठ कर आराम से खाया भी न गया बुढ़िया से। मुनिया के ससुर ने जी-जान से बेटे की दूसरी शादी करने का प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। यदि कहीं कुछ बात पकने वाली भी बनी तो मुनिया के बाप ने वहाँ जाकर उनका काम खराब कर दिया। मुनिया का बाप रामू रौब-दौब का आदमी था और फिर उसकी बात भी युक्तिसङ्गत थी। उसकी बेटी को छोड़ने वालों के लड़के की आखिर दूसरी शादी क्यों?

परन्तु रमधनिया कहाँ जाय? मुनिया के जैसा बाप उसे भगवान् ने नहीं दिया। उसके बाप ने तो रमधनिया पर दो हजार पाँच सौ रुपया लेकर जुआ खेला था, शराबें पी थीं। मुनिया गम्भीर हो गयी। उसका दिल भर आया। बहू की दशा उससे छिपी नहीं थी और इस पहले ही प्रसव-काल में उसके साथ जो व्यवहार उसकी सास ने किया वह उसने अपनी आँखों से देखा था। मुनिया अपने कोठे के ऊपर बैठकर दातादीन के मकान में होने वाली सभी बातों को देख लेती थी। बहू की जिन्दगी के साथ खेल खेला गया था दातादीन के घर में।

"अच्छा रमधनिया बहू! अधिक इस समय कुछ नहीं कहूंगी। तुझे बुखार आरहा है। इसका इलाज तुझे जरूर करना चाहिए। ताई नहीं करेगी···नहीं करेगी।" मुनिया ने कहा।

"लेकिन ननदजी! इलाज किस चीज का नाम है, मैं नहीं जानती। यह सुना जरूर है मैंने कि बीमारी का इलाज कराया जाता है। मेरा

आज तक कभी बीमारी में किसी ने कोई इलाज नहीं कराया ।" रमधनिया ने अपने डबडबाये हुए नेत्रों से मुनिया के मुख पर देखते हुए कहा ।

मुनिया के बदन में सिहरन आगई । उसने एक बार करुण दृष्टि से रमधनिया की बीमार हड्डियों के ढाँचे पर दृष्टि डाली और फिर उसके नेत्र आकाश पर उठगये । उसने नेत्र बन्द करके मन-ही-मन कहा,—'भगवान् ! नारी की यह दुर्दशा क्यों ? क्यों नारी ही आज नारी के सीने पर चढ़कर उसका रक्त पी जाना चाहती है ? बेलें अपने फल और फूलों को स्वयँ चूसने पर क्यों उतारू हो रही हैं ?' इस सब का कारण उसने अविद्या को ही समझा ।

मुनिया गाँव के मदरसे में चार दर्जे तक पढ़ी थी,—विद्वान् थी ।

मुनिया चुपके से एक शब्द भी बिना बोले घर से निकल गई और कुछ ही मिनट बाद उसने आकर दो गोलियाँ रमधनिया को दीं,—"इन्हें मुँह में डालकर पानी पीलो, निगल जाओ इन्हें । बुखार छूटजायगा, आज ही, कल नहीं चढ़ेगा ।" शायद कुनैन की गोलियाँ थीं वह ।

रमधनिया इस गाँव की औषधियों से थर-थर काँपती थी । उसकी बच्ची को भी एक औषधि उसकी सास ने चटाई थी,—परन्तु मुनिया पर वह अविश्वास न कर सकी । प्रसव-काल में ही रमधनिया को मलेरिया ने घेर लिया था और इस कदर रगड़ा कि शरीर से रक्त मान्स को निचोड़ कर केवल पिञ्जर मात्र छोड़ दिया ।

मुनिया की गोलियों ने रामबाण का काम किया रमधनिया के बुखार पर,—बुखार छूट गया । दूसरे दिन तमाम दिन बुखार न आने से रमधनिया को जीवन की कुछ आशा बँधी । उसने तनिक प्यार से अपनी बच्ची को छाती से लगाया, नन्हें-नन्हें कोमल गालों को चूमा और अपनी दो उँगलियों से उसके प्यार-भरे कपोलों पर थपकी दी ।

दोपहर का समय ऐसा होता था जब रमधनिया की सास जङ्गल में बाड़ी चुगने चली जाती थी । मुनिया उसी समय रमधनिया

की खैरखबर लेने जापहुँचती। मुनिया ने अपने पास से छै-सात दिन दवा-गोली खिलाकर रमधनिया को स्वस्थ कर दिया। मुनिया का एहसान रमधनिया जीवन भर नहीं भूल सकती। गाँव में यही एक स्त्री थी जिससे वह अपने दुखदर्द की बातें विश्वास के साथ कर सकती थी।

रमधनिया पढ़ी-लिखी एक फूटा अक्षर भी नहीं थी, परन्तु थी बहुत चतुर। आदमी की उसे परख थी। गाँव की सभी स्त्रियों के सामने सास की खुलेआम निन्दा करना उसने नहीं सीखा था और दबकर जीवन की नौका को आगे घसीटने का वह अपना सङ्कल्प बना चुकी थी।

मेहनत और मशक्कत में रमधनिया किसी से कम नहीं थी। चार औरतों का काम अकेली करलेती थी। उसे अपनी मेहनत पर अभिमान था। बाप के यहाँ जब तक रही, अपनी कमाई का उसे भरोसा रहा। घास खोदना, कुट्टी काटना इत्यादि पुरुषों के काम भी वह हँस-खेल कर करसकती थी। चक्की, चूल्हा, चर्खा इत्यादि स्त्रियों के कामों की तो उसे चिन्ता ही न थी। परन्तु इधर इस बीमारी ने उसे अपाहिज-सा बना दिया था।

बुखार से मुक्ति पाकर उसका शरीर हिलने-डोलने लगा। सास, जो कभी इधर झाँकती भी नहीं थी बीमारी के दिनों में, अब वह भी अपनी आज्ञाएँ फटकारने लगी और रमधनिया ने शरीर में शक्ति न रहने पर भी उनका पालन किया। रमधनिया का बुखार अवश्य टूट गया परन्तु अपना वह पुराना स्वास्थ्य उसे प्राप्त न हो सका। प्रसवकाल की दुर्दशा ने उसे जीवन भर के लिए रोगी बना दिया,—नष्ट कर दिया उसका स्वास्थ्य।

दातादीन जब दिनभर का थका माँदा संध्या को रोटी खाने घर आता तो बच्ची पीढ़े पर लेटी मिलती। बच्ची सुन्दर थी, इसलिए दातादीन पर उसे एक बार गोद में लिए बिना न रहा जाता; परन्तु चन्द

की माँ को दातादीन का यह छिछोरपन अच्छा न लगता।

दातादीन और उसकी स्त्री वास्तव में परेशान थे अपने बेटे चन्दू से और उसका क्रोध उतरता था रमधनिया पर। रमधनिया ने चन्दू पर जादू क्यों नहीं किया, उसकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों को बाँध क्यों नहीं लिया ? यह भी तो औरत की एक कमजोरी ही है,—रमधनिया की सास सोचती।

अब रमधनिया का स्वास्थ्य पहले से कुछ अच्छा था। चक्की, चूल्हा और घर का सब काम-काज वही करती थी। जब काम से थक जाती तो अपनी बच्ची को दो घड़ी बैठकर दूध पिलाती, उससे अटपटी बातें करती और वह भी टुमर-टुमर रमधनिया की ओर निहारती,—माँ थी रमधनिया उसकी। पहचानती वह अभी नहीं थी परन्तु कुछ-कुछ होर अवश्य करने लगी थी। कभी-कभी बच्ची आप-ही-आप पड़ी-पड़ी मुसकराती और हँसती तो रामधनिया का मन उस खिलौने को देखकर गद्‌गद् हो जाता, उसके जीवन की समस्त पीड़ा जाने कहाँ चली जाती। वह प्यार से अपना मुँह बच्ची के मुख से लगाकर टिका देती और आँखें बन्द करके आनन्द-विभोर होउठती। बच्ची का कोमल मुख, ठोड़ी पर गढ़ा, सुनहली अलकें, साँवला रङ्ग, मोटी-मोटी आँखें सभी नयनाभिराम थे, आकर्षक थे सभी के लिए और रमधनिया के लिए तो मानो विधाता ने समस्त सृष्टि का सौन्दर्य कूट-कूट कर उसकी बालिका में ही भर दिया था। उसने ऐसा सुन्दर बालक आज तक जीवन में कभी नहीं देखा था।

बच्ची का नाम दातादीन ने झुनिया रखा, साथ ही झुन-झुन करने वाली हल्की सी एक चाँदी की चीज भी गढ़वाकर उसके पैरों में पहना दी उसके और फिर उठाकर प्यार से चुमकारा, पुचकारा,—अब झुनिया दातादीन को बहुत अच्छी लगने लगी थी। दोपहर और शाम को जब वह खाना खाने के लिए आता तो खाने के पश्चात् दो घड़ी दुबारी में पड़े पीढ़े से झुनिया को उठाकर अवश्य खिलाता था।

घर में लड़की पैदा होने की बात अब पुरानी पड़ चुकी थी।

दातादीन को अपनी मेहनत पर भरोसा था। चन्दू का ब्याह करते ही उसने साहूकार का कर्ज बहुत जल्द उतारने की कसम खाकर लँगोटा कस लिया। मेहनत में सारा गाँव जानता था कि दातदीन ने कभी दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं गिना। भयङ्कर सर्दी की दाँतों को किटकिटा देने वाली रातों में भी वह अकेला ही कसला (फावड़ा) कन्धे पर रखकर गाँव से चार मील दूर नहर-पार सुनसान जङ्गल में पानी बलाने[1] खेतों पर जाता था। आसपास के खेत वालों को भी दातादीन की बहादुरी का सहारा था।

परन्तु इधर कुछ दिन से उसका स्वास्थ्य खराब चलरहा था। चन्दू उसके कहे में नहीं था, यही उसके जीवन की एक समस्या थी। उसने दुर्भाग्यवश अपने चन्दू को गाँव के मदरसे में दर्जे चार तक पढ़ा लिया यह उसने बुरा किया। मदरसे के लड़कों की सोहबत में चन्दू बीड़ी पीना, ताश खेलना, गुल्ली डन्डा बजाना, इधर-उधर के गाँवों में साँग देखने के लिए चुपके से खिसक जाना और कभी-कभी कुछ आवारागर्दों की टोली में बैठकर गाँव की खिची हुई शराब में चुस्की लगाना तो सीख गया; पर कोई भली बात उसे न आई। दो चार बार दातादीन ने समझाने-बुझाने के पश्चात् उसे करारी मार भी लगाई परन्तु चन्दू पर उसका कोई असर नहीं हुआ,—उल्टा वह घर से रफूचक्कर होगया। बेचारे दातादीन पर और मुसीबत पड़गई। उसकी बीमारी के समय उसके काम में हाथ बँटाने से तो गया, उल्टा कामकाज छोड़कर उसकी खोज के लिए उसे निकलना पड़ा। निकलता भी कैसे नहीं,—घर में जाता तो चन्दू की माँ बूढ़ी शेरनी की तरह उसपर झपट कर आती,—रमधनियाँ अलग मुँह लटकाये आँखों से आँसू बरसाती दिखलाई देती थी, मानो घर में कोई मरगया था। दातादीन बहुतेरा कड़क-कड़क कर अपना साहस बटोरता हुआ

१. खेतों में पानी देने की क्रिया को 'बलाना' कहते हैं।

कहता,—"अच्छा ही हुआ, नालायक मेरी आँखों से ओझल हो गया। आँख फूटी, पीर गई। और भेज अपने लाल को मदरसे।" मानो दातादीन की दृष्टि में चन्दू की आवारगी का पूरा-पूरा दोष मदरसे जाने के ही कारण था। यदि वह मदरसे न जाकर शुरू से ही हल-बैल सँभालता, नाड़ी-साँटे से मन लगाता, गाय-बैलों का काम करता, कुट्टी-इत्यादि काटता तो यह दिन न देखना पड़ता।

"मदरसे भेजने को कहेगा अब! मेरे लाल की मार-मार कर हड्डियाँ तोड़ डालीं,—उसे नहीं कहेगा। स्याना-समाना लड़का है,—भला कभी इतने बड़े बेटों को भी इस तरह मारा जाता है। मेरी गोद खाली करदी तूने।" बबकार कर चन्दू की माँ रोतीहुई बोली और माथा पीटकर चौक में गिरगई।

"तो मैं नहीं जाता उस पाजी को ढूंढ़ने। अपने बेटे की करामात सुनेगी तो दाँतों-तले उँगली दबा जायगी। जानती नहीं है उस जोगी के बेटे रमला और नाई के लड़के कन्नू को,—अव्वल दर्जे के बदमाश कहीं के,—उन्हीं की चौकड़ी में बैठने लगा है तेरा लाडला। परसों ही तो गाँव में दारोगा आया था, मार-मार कर खाल उड़ादी उन पाजियों की सारे गाँव के सामने। वैसी ही दशा तेरे लाल की भी न हो, तो कहना। तूने प्यार-प्यार में कभी काम ही नहीं करने दिया उसे। अब पड़गई है हराम का खाने की बान। मैं मेहनत करने को कहता हूं, इसी लिए तो जहर दिखलाई देता हूं। निकम्मा बनाकर तूने ही उसे कहीं का न छोड़ा।"

कुछ भी सही,—चन्दू कैसा भी सही,—आखिर वह दातादीन का बेटा था। प्यार उसके लिए दातदीन के दिल में भी कम नहीं था, परन्तु उसके लच्छन दातादीन को बिलकुल नापसंद थे। दातादीन को घरबार, जङ्गल बाहर का सब काम छोड़कर चन्दू की खोज के लिए निकलना पड़ा। बम्बे की आने वाली बारी[1] छोड़दी, खेतों की नलाई का ध्यान भुला

१. नम्बर, बार।

दिया, जानवरों का छप्पर भी छाता-छाता बीच ही में रुक गया, सर्दियाँ कड़ाके के साथ ऊपर को चढ़ चलीं, कोल्हू की बारी छूटगई,—सब काम रुक गया। दातादीन ने फटे कुर्ते पर बहू से टुक्की चढ़वाकर पहना, गाँठी जूतियाँ पैरों में डालीं, लाठी हाथ में ली और कन्धे पर गाढ़े की चादर रखकर सुबह-ही-सुबह बिना किसी से कुछ कहे-सुने गाँव से चल दिया, अपने चन्दू की तलाश में।

: ३ :

दातादीन इधर-उधर बिरादरी के गाँवों में, नाते-रिश्तेदारों में, ढूंढ़-भाल के लिए फक्का बना फिरा, परन्तु कोई लाभ न हुआ,—चन्दू का कहीं पता न चला। लाचार पाँचवें दिन, गर्दन नीची किये, उदास चेहरे से वापस लौट आया, भगवान् के भरोसे पर। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता था। खेत सूखे जारहे थे,—बैलों और जानवरों की खोरों में कल्लू ठीक से न्यार डालता था या नहीं इसकी भी उसे चिन्ता थी। क्योंकि यदि बैल बैठ रहते तो वह कहीं का भी न रहता। कल्लू चमार दातादीन का पुराना नौकर जरूर था, लेकिन खेती करना वह बेचारा चमार क्या जाने।

चन्दू छः दिन तक नहीं लौटा। रमधनिया बहुत दुखी थी। यह सच था कि चन्दू ने आज तक कभी रमधनिया के दिल का हाल नहीं पूछा, दो-चार बार अपनी माँ के कहने से उल्टी उसके साथ डाट-फटकारा, गाली-गलौज और मार-पीट ही की होगी, परन्तु वह उसका पति था। उसकी दुनियाँ सूनी थी चन्दू के बिना। वह चाहती अवश्य थी कि चन्दू से कभी खुलकर बातें करे, परन्तु साहस ही नहीं होता था। चन्दू घर में आता ही कम था और यदि आता भी था तो अपने काम-से-काम। उसे शौक ही केवल अपने खाने पहनने का था। इसके अतिरिक्त उसे किसी बात का भी ध्यान नहीं था।

चन्दू की माँ बैठी-बैठी आज अचानक ही आग-बबूला होगई। चन्दू

स्मृति उसके नेत्रों में घूम रही थी। कई दिन होगये थे उसे रोते-रोते; खाना भी नहीं खाया था। खाना रमधनिया भी नहीं खासकी थी,—"डायन! तूने मेरे लाल को भगाकर ही दम लिया; बस अब मेरा लाल नहीं लौटेगा।" इतना कहकर एक लम्बी साँस ली।

रमधनिया से भी न रहा गया। सास के सामने उसने कभी कुछ न बोलने की कसम खाई थी; परन्तु आज उसे अपनी वह कसम तोड़ देनी पड़ी,—"माजी! उनके चले जाने का कष्ट आपको बहुत अधिक है, यह मैं जानती हूं; लेकिन मेरा भी तो सर्वस्व लुट गया,—क्या कभी आपने यह भी सोचा है?"

और इतना कहकर रमधनिया दुआरी से उठकर कोठे में चली गई। वहाँ बाँस की पट्टी वाली झोली खाट पर एक पोतड़े में लिपटी झुनिया पड़ी थी। झुनिया खेल रही थी अकेली-ही-अकेली फुदक-फुदक कर। अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे उन्हें हवा में नचा रही थी और पैरों की झाँवरें कभी-कभी बज जाती थीं। रमधनिया खटिया के पास पीढ़ा डालकर बैठ गई और झुनिया को दूध पिलाने के लिए गोद में उठा लिया। झुनिया अब माँ को पहचानती थी। माँ को देखकर झुनिया का फूल-सा मुख खिल गया। रमधनिया ने अपने हृदय का भार हल्का करने के लिए झुनिया को सीने से लगाया, बार-बार चुमकारा,—और वास्तव में उसका कष्ट कुछ कम हुआ, उसे कुछ सहारा मिला। रमधनिया कितनी ही देर तक झुनिया को अपने सीने से चिपकाये आँखों से अश्रु-धारा बहाती रही, हल्का करती रही अपने हृदय का भार।

चन्दू सातवें दिन स्वयँ लौट आया। दुलमुलाता-दुलमुलाता घर में घुसा तो रमधनिया ने कोठे के अन्दर से ही उसके दर्शन प्राप्त कर जीवन का सुख पालिया और माँ ने तो न जाने कितनी बार उसे अपने सीने से लिपटा-लिपटा कर बलाएँ लीं, मनौतियाँ मानीं और देवी का प्रसाद बोला।

परन्तु दातादीन ने चन्दू से एक भी बात नहीं की। दातादीन को

आज बुखार था और बुखार में भी वह हल जोतने के लिए गया था। अभी परसों ही तो हल्का सा छींटा पड़ा था, जमीन सूखी जारही थी। यदि जमीन को वह इस समय न दाब लेता तो एक दाना भी पैदा न होता। बुखार की क्या है, दो चार दिन में छूट ही जायगा।

चन्दू चुपके-चुपके घेर में घुसा और एक तरफ पड़ी खटपावड़ी उठाकर बैलों के नीचे से गोबर अलग करता हुआ उनकी खोरों तक पहुँच गया। न्यार में हाथ डालकर जरा उसे इधर-उधर किरोला और फिर किसी तरह दातादीन की खाट तक पहुँचा। दातादीन को तेज बुखार था, तमाम शरीर जल रहा था, होंठ सूख रहे थे। चन्दू को देख कर मानो उसका सारा बुखार उतर गया, शरीर की सब जलन जाती रही और होंठों की खुश्की भी दूर होगई। चन्दू लाख बुरा था, परन्तु पुत्र-स्नेह का स्थान उन सब बुराइयों से ऊपर था, यह दातादीन ने आज अनुभव किया।

परन्तु दातादीन झुका नहीं ऊपर से; बुखार में भी गरज कर ही बोला,—"इतने दिन कहाँ रहा नालायक! शर्म-हया नहीं रही तुझ में। मैं जानता हूँ तू जरूर खान्दान का नाम रौशन करेगा। पट्ठों में तेल लगाना जो सीखा है तूने। लुच्चे लफंगों की सौहबत तुझे बर्बाद करके छोड़ेगी। तू आप तो डूबेगा ही, हमें भी डुबाकर दम लेगा।" कहते-कहते दातादीन का हलक सूख गया, वह चुप होगया।

चन्दू ने कुछ जवाब नहीं दिया। दातादीन की बातें इस कान सुनी और उस कान निकाल दीं। कुछ देर दातादीन की खाट के आसपास गर्दन नीची किये फिरता रहा, परन्तु इसी समय उसकी दृष्टि जो घेर के सामने, दूर नीम के नीचे गई तो देखा रमला और कन्नू खटिया पर बैठे मौज से बीड़ी सुट्या रहे थे,—चन्दू से रुका न गया। वह तनिक इधर-उधर फिरकर किसी तरह दातादीन से कन्नी काट, सीधा नीम के पेड़ के नीचे अपनी चाण्डाल-चौकड़ी में पहुँच गया।

चन्दू ने मन में समझा कि दातादीन बुखार में बेखबर पड़ा था,

परन्तु दातादीन को अपने बुखार से चन्दू के चालचलन की कहीं अधिक चिन्ता थी। उसने चन्दू के खिसकते ही भाँप लिया कि यह हो-न-हो अपने आवारा दोस्तों के ही पास गया होगा। घेर से बाहर दृष्टि फैलाई तो नीम के पेड़ के नीचे रमला, कन्नू और चन्दू बीड़ी के लम्बे-लम्बे कश खींचते दिखाई दिये। यह दृश्य देखकर दातादीन के तन-बदन में आग लगगई। उसने चादर से अपना मुँह ढाँप लिया और मन-ही-मन कहा,—'पाजी कहीं का। बाप के मरने की भी चिन्ता नहीं, फिर चिन्ता इसे किसकी होगी।' और यह विचारते-विचारते उसे आज न जाने क्यों चन्दू की माँ पर बहुत क्रोध आया। चन्दू को लाड़-प्यार में बिगाड़ देने वाली इस समय उसकी माँ ही थी,—दातादीन की नजर में।

इसी समय चन्दू की माँ अपने पुरोहित को जीमने का न्यौता देकर यहाँ आई। उसे पता नहीं था कि दातादीन इस तरह तेज बुखार में पड़ा जलरहा था। उसने धीरे से उसकी चादर खिसकाते हुए विनीत भाव से कहा,—"मैंने कहा सुना तुमने! चन्दू लौट आया। अब भगवान् के लिए कुछ न कहना उसे। कहीं ऐसा न हो कि वह फिर चला जाय।"

"बहुत अच्छा।" हृदय के भाव हृदय में ही समेटकर दातादीन ने कहा, परन्तु उसके जलते हुए लाल अङ्गारों के मानिन्द दोनों नेत्र अभी तक ज्यों-के-त्यों चन्दू की माँ के मुख पर टिके हुए थे।

चन्दू की माँ झिझक-सी गई। उसने दातादीन का माथा छुआ तो वह जल रहा था। वह धक्क से रहगई,—नीचे का दम नीचे और ऊपर का ऊपर; वह डर गई। घबरा कर बोली,—"इतना तेज बुखार!"

"हाँ, इतना तेज बुखार! और मुझे इतने तेज बुखार में ही पड़ा छोड़कर तेरा लाड़ला वह सामने बैठा रमला और कन्नू जैसे आवारागर्दों के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा है।" इतना कहकर उसने गम्भीरतापूर्वक सामने नीम के पेड़ की ओर इशारा किया, जिसके

नीचे चन्दू, रमला और कन्नू के साथ बैठा बीड़ी पीरहा था।

चन्दू की माँ मुँह से एक शब्द भी न बोली,—वहीं चकराकर भूमि पर बैठगई। वह गिर जाती यदि दातादीन ने परिस्थिति को भाँप न लिया होता। दातादीन ने इतने तेज बुखार में भी विद्युत् की गति से उठकर चन्दू की माँ को अपनी अङ्क में भरलिया और उठा कर खटिया पर लिटा दिया। चन्दू की माँ बेहोश होगई। आज पाँच-छै दिन से वह भूखी थी,—चन्दू के लिए,—परन्तु जब उसने उसी चन्दू का यह व्यवहार उसके पति,—अपने पिता दातादीन,—के साथ देखा तो वह सहन कर न सकी। शायद प्रथम बार उसे जीवन में चन्दू पर क्रोध आया। आज तक सर्वदा ही उसने चन्दू के कसूरों को दूसरों के सिर थोपने का प्रयास किया था और जब उसे थोपने के लिए कोई अन्य नहीं मिला था तो उसने अपने सिर लेलिया था उन्हें,—परन्तु आज वह ऐसा न कर सकी। उसे जीवन में एक गहरा धक्का लगा,—शायद झुनिया के जन्म लेने से भी अधिक जोरदार।

दातादीन चन्दू की माँ को खाट पर लिटा कर कुए की ओर लपका और एक डोल पानी खींच लाया। उसके मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे दिये तो कुछ होश आया। उसके मुँह से बेहोशी में ही यह शब्द निकले,—"इतना तेज बुखार!" और नेत्र खुले तो उसने अपने को खटिया पर पड़ा और दातादीन को बुखार में जलते हुए भी नेत्रों में आँसू लिए खटिया के पास जमीन पर बैठकर माथे पर हाथ रखे पाया।

"चन्दू की माँ!" उसके नेत्र खुलने पर दातादीन ने व्यग्रता पूर्वक कहा।

और चन्दू की माँ हड़बड़ा कर उठ बैठी,—"मुझे ऐसा लगा जैसे मैं बेहोश होगई।" वह हल्के से बोली।

"हाँ चन्दू की माँ तू बेहोश होगई थी।" उसे सँभालते हुए दातादीन ने कहा; परन्तु अब भी चन्दू की माँ ठीक नहीं थी। कुछ घबराहट-सी थी उसके दिल पर; वैसे चेतन अवस्था में आगई थी वह।

"अब मैं कुछ नहीं कहूँगा चन्दू की माँ ! तुम्हारे चन्दू को।" दातादीन ने दीनता पूर्वक अपनी स्त्री के नेत्रों में कोमलता से झाँकते हुए कहा।

और चन्दू की माँ को क्रोध आगया। वह सिंहनी के समान तड़क कर बोली,—"तुम नहीं कहोगे पाजी को,—परन्तु मैं उसे घर में नहीं घुसने दूँगी। कहीं भी जाय, कुछ भी करे। हमसे उसका नाता-रिश्ता ही क्या ? मैं फूटी आँखों भी अब उसकी शक्ल देखना नहीं चाहती।" और कहती-कहती वह फिर दुर्बलता में अचेत होगई।

दातादीन ने चन्दू की माँ के जीवन में यह आकस्मिक परिवर्तन देखा, तो वह दङ्ग रह गया। बोल कुछ न सका, परन्तु उसने अनुभव किया और आज अपनी स्त्री के जीवन के उस महानतम पहलू पर उसकी दृष्टि गई जिसका कभी उसने स्वप्न में भी खयाल नहीं किया था। वह धीरे-धीरे अपनी गर्म हथेलियों से चन्दू की माँ के स्वेदपूर्ण मस्तक को सहला रहा था। उसने अनुभव किया कि उसका मस्तक किसी भी प्रकार उसकी गर्म हथेलियों से कम जलन लिए हुए नहीं था। दातादीन ने महसूस किया कि उसकी स्त्री में अपने साथी के लिए कितना प्यार था, कितना मान था, कितनी श्रद्धा थी।

साधारण भावुकता में पसीज जानेवाले चन्दू की माँ के नेत्र आज खुश्क पड़े थे और उसकी पुतलियों के चारों ओर का सफेद भाग रक्तिम होता जारहा था। पलकें स्थिर थीं और कानों की लौ अङ्गारों के समान जल रही थीं। उसका श्वाँस बड़ी ही तीव्र गति के साथ ऊपर नीचे चलरहा था।

यह दशा देखकर दातादीन भयभीत होउठा और उसके हाथ-पैर काँपने लगे। थोड़ी ही देर में उसने देखा कि चन्दू की माँ बहुत तेज बुखार में बुड़बुड़ा रही थी। वह कहती जाती थी,' नालायक ने मेरी कोख को भी लजा दिया। ऐसा जानती तो पैदा होते ही गला घोंट देती। नालायक औलाद से तो बाँझ भली।'

चन्दू की माँ के इन शब्दों ने दातादीन के हृदय को कितनी सान्त्वना प्रदान की, यह कहना कठिन था। दातादीन अपना बुखार भूल गया। अपनी चिन्ता उसे न रही और वह उसी प्रकार चन्दू की माँ को खाटपर लिवा कर घर लेगया।

रमधनिया ने यह सब देखा तो वह धक्क-सी रहगई। उसने तो सास की आज्ञा से आज खीर बनाई थी पण्डित को जिमाने के लिए और गेहूँ के चकले-बेलन वाले पतले-पतले फुलके। वह प्रतीक्षा में थी कि उसकी सास आती ही होगी और पण्डित को जिमायेगी।

खाना उसी तरह चूल्हे पर छोड़ कर वह उधर झपटी और सास के माथे पर हाथ रखकर महसूस किया,—बहुत तेज बुखार था। कुछ भी न समझ सकी। दातादीन ने गम्भीरता पूर्वक कहा,—"बहू! तुम्हारी सास को अभी-अभी बुखार चढ़ आया। खाना छोड़ कर इधर की देख-भाल करलो। मेरा भी शरीर बुखार से टूटा जारहा है।" और इतना कहकर दातादीन वहीं जमीन पर बैठ गया। उसका सिर चकरा रहा था।

एक विचित्र विपत्ति आगई रमधनिया के सिर पर। घबराहट से बदन पसीना-पसीना हो गया। इसी समय चन्दू की माँ का न्यौता हुआ ब्राह्मण भी आपहुँचा। दातादीन ने पण्डित का मुँह देखकर बहू से कहा,—"बहू! पण्डित को जिमा दो। चन्दू की माँ शायद जीमने को कह आई होगी।"

"हाँ, हाँ चौधराइन जी ने न्यौता दिया था, चन्दू बेटे के लौट आने की खुशी में।" काले पण्डित ने मूँछें तिड़का कर कन्धे पर अँगोछा डालते हुए कहा और फिर सन्स्कृत का-सा एक श्लोक पढ़ा, मानो वह इस परिवार को आशीर्वाद दे रहा था। और फिर बिना दातादीन की बीमारी और चन्दू की माँ के खाट पर लेटेहोने की बात किये जल्दी में बोला,—"जरा जल्दी करो बहू रानी! अभी और कई घर जीमने जाना है। मैंने सोचा पहले यहीं का काम निपटाता चलूँ।"

"हाँ, हाँ बहू ! पण्डित को खाना खिला दो।" धर्मभीरु दातादीन बोला और स्वयँ चन्दू की माँ की खाट के ही पास दीवार से कमर लगाकर बैठगया। इस समय उसे अपनी बीमारी से अधिक चन्दू की माँ के न्योते हुए ब्राह्मण को जिमाने की चिन्ता थी।

पण्डित जीमा और चवन्नी दक्षिणा की लेकर दातादीन के घर से बिदा हुआ। चन्दू की माँ ने कुछ नहीं खाया। दातादीन ने बहू के आग्रह पर मूँग की दाल का पानी पीलिया और आज रमधनिया ने भी चन्दू को खाना खिला कर खाना खाया,—छै दिन बाद।

चन्दू की माँ का बुखार आज छै दिन होगये कम नहीं हुआ। एक बार नेत्र बन्द कर लिए-सोकर लिए। रमधनिया ने मुनिया से अपनी सास के इलाज में सहारा लिया, परन्तु सास ने दवा के नाम की कोई चीज जबान से नहीं छुई। केवल गङ्गाजल की एक बोतल से, जो मुनिया ने लाकर दी थी, थोड़ा-थोड़ा कभी बहुत कहने से जल पी लिया।

दातादीन का बुखार दूसरे दिन कुछ कम होगया और तीसरे दिन बिलकुल छूट गया। उसने चन्दू की माँ के स्वास्थ्य के लिए पण्डित न्यौता, बछिया दान की परन्तु किसी ने वार न खाया। रमधनिया ने जो कुछ भी गाँव की किसी बड़ी-बूढ़ी ने कहा, सभी कुछ किया परन्तु चन्दू की माँ ने नेत्र न खोले, बुखार न उतरा।

चन्दू को अपने चार दोस्तों से जब अवकाश मिलता तो जाहिर-दारी निभाने के लिए माँ के पास आता, बैठता, परन्तु माँ एक शब्द न बोलती। माँ बोल ही न सकी कुछ, उसे सदमा पहुँचा, उसके नारीत्व को ठेस लगी। चन्दू ने अपनी हरकतों से अपनी माँ के स्वाभिमान को कुचल दिया।

दातादीन ने जब यह समझ लिया कि अब चन्दू की माँ नहीं बचेगी तो वह उदास मन उसकी खाट की पट्टी के पास बैठ कर बोला,—"चन्दू की माँ ! ऐसी कठोर तो तू जीवन में कभी नहीं हुई।" इतना कहकर वह झुनिया को गोद में लेकर बोला,—"हमारी ओर नहीं

देखती तो अपनी पोती की ही ओर जरा देख चन्दू की माँ !" और फिर तरसते नेत्रों से चन्दू की माँ के मुख पर देखा।

चन्दू की माँ ने दातादीन के इन शब्दों को सुनकर नेत्र खोल दिये। चन्दू की माँ ने झुनिया को लेने के लिए हाथ भी बढ़ाने का प्रयास किया, परन्तु हाथ ऊपर न उठ सके। दातादीन झुनिया को उसके निकट लेगया। चन्दू की माँ के नेत्रों में आँसू भरआये। झुनिया रो पड़ी,—शायद डर कर। उसके नेत्र फिर बन्द हो गये।

चन्दू की माँ मरी नहीं,—दस पाँच दिन के काया कष्ट के पश्चात् खड़ी हो गई, परन्तु चन्दू ने उसकी बीमारी में एक दिन भी सेवा नहीं की, उसे अवकाश ही न मिला,—केवल ताक-झाँक जाता था कभी-कभी, यही कौन कम था।

: ४ :

झुनिया अब तीन वर्ष की होगई थी। तुतली भाषा में सब-कुछ बोलती। अपनी बजनी झाँवरों को पहिने दिनभर इधर-उधर घूमती रहती और जब दातादीन खाना खाने आता तो उछल कर उसकी गोद में चढ़जाती थी।

जब रमधनिया दातादीन का खाना थाली में परसकर उसके सामने लाती तो झुनिया पास बैठकर खाती,—कहती,—"मेना खाना है।"

"हाँ, तेरा ही तो खाना है झुन्नो ! हम तो तेरे ही भाग का खाते हैं।" टुकड़ा मुँह में डालते हुए दातादीन कहता। एक दिन इसी झुनिया को समाप्त करने की बात उसके मन में आई थी,—वह विचार अब दातादीन के लिए स्वप्न बनगया। झुनिया आज दातादीन का एक-मात्र दिल बहलाने का खिलौना थी।

पिछली बीमारी के पश्चात् दातादीन स्वस्थ तो हुआ परन्तु उसका वह पुराना स्वास्थ्य लौट कर न आसका। खेती करता वह अवश्य था, परन्तु मेहनत उससे होती ही नहीं थी, बदन टूटने लगता था, दर्द करने लगता था और जरा सी मशक्कत अधिक करने पर शरीर में ज्वर ठहर जाता था।

चन्दू ज्यों-त्यों करके खेती के काम से लगा भी तो काम में उसका मन नहीं रहता था। यारबाश चौकड़ी का चस्का वह छोड़ नहीं पाता था,—यह दातादीन के आखीरी जीवन की सबसे बड़ी जलन थी।

चन्दू की शादी में जो रुपया दातादीन ने साहूकार से लेलिया था

उसके लौटाने का कोई प्रबन्ध इन तीन सालों में दातादीन न कर सका। कागज की मियाद पूरी होने पर साहूकार ने भलमन्साहत ही की। अस्ल में सूद को जमा करके दूसरा कागज लिखा लिया। यदि दावा करदेता तो शायद दातादीन को घर और जमीन दोनों से बेदखल होना पड़ता।

रमधनिया बेचारी इन दखली-बेदखली की परेशानियों को क्या जाने! आज खाना बनाने के पश्चात् जब वह सर्दियों में धूप खाने के लिए भुनिया को लेकर बैठी तो मुनिया उसके पास आकर बैठगई। मुनिया के सामने रमधनिया अपनी परेशानियों को खोल कर कह डालती थी। आज उसने नेत्रों में आँसू भरकर कहा,—"ननदजी! तुम ही जरा अपने भैया को समझाओ कि वह गाँव की आवारा चौकड़ी में बैठना छोड़ दें। ससुरजी उनकी इस बात से बहुत नाखुश हैं।"

"नाखुश होने की तो बात ही है रमधनिया! इस घर को ताऊ ने अपने को मिट्टी में मिलाकर बनाया है। किस मुसीबत से ताऊ ने चन्दू की शादी की,—इसे चन्दू क्या जान सकेगा। परन्तु भाग्य की बात है। जब दिन उल्टे आते हैं तो अच्छे-भले आदमियों के भी ऐसे ही खराब लच्छन होजाते हैं। मत बदल जाती है बहू!" मुनिया ने दिल भारी करके कहा। रमधनिया के दुःख को देखकर मुनिया कभी-कभी अपना भी दुःख भूल जाती थी। वह फिर रमधनिया के मुँह पर देख कर बोली,—"मैं जरूर समझाने की कोशिश करूँगी बहू! लेकिन चन्दू की सोहबत बहुत बिगड़ चुकी है। जिन लोगों की चौकड़ी में वह बैठता है, वह लोग आस-पास के गाँवों में रात को चोरी करने के लिए जाते हैं, कूमल फोड़ते हैं, अँधेरे-उजाले किसी की बहू-बेटी को पाजाते हैं तो उनकी चीज-वस्त खसोट लेते हैं....चन्दू ने ताऊ के नाम को भी दाग लगा दिया।"

रमधनिया मुनिया पर विश्वास करती थी। वह जानती थी कि मुनिया ने उसके पति को व्यर्थ उड़ाने के लिए यह बातें नहीं कहीं। उसके हृदय में रमधनिया के लिए सहानुभूति थी।

और संध्या को वाकई थाने का सिपाही दातादीन के मकान पर आधमका। रमधनिया का कलेजा धक्क-धक्क करने लगा। उसने घर का दरवाजा बन्द करलिया। चन्दू वहाँ नहीं था। परन्तु उसके दरवाजा बन्द करने से काम नहीं चला। दातादीन को स्वयँ आकर मकान की तलाशी दिलवानी पड़ी। गाँव में शोर मचगया,—'चन्दू के लिए पुलिस आई है।' दातादीन शर्म से गढ़गया। एक बार दिल में आया कि सीधा जाकर नहर में छलाँग लगाजाय; जो काम इस खान्दान में आज तक नहीं हुआ वह आज उसके चन्दू ने कर दिखाया।

चन्दू पुलिस को गाँव में मिल गया। रमला और कन्नू वहाँ पहले ही मौजूद थे। तीनों को पुलिस पकड़ कर लेगई और ले जाकर थाने की हवालात में बन्द कर दिया। दातादीन को भी अपमानित किया पुलिस ने।

दातादीन माथे पर हाथ रखे घर आया तो रमधनिया हिड़क-हिड़क कर रो रही थी। चन्दू की माँ की तो दशा ही खराब थी। वह पछाड़ खाये पड़ी थी खाट पर,—कह रही थी,'मेरे लाल को बचाओ, मेरे लाल को बचाओ।'

मुनिया अपनी माँ को रोती देखकर रुँआसी-सी उसके पास खड़ी थी। दातादीन को आता देख वह उसकी ओर लपकी और दातादीन ने अनायास ही उसे गोद में उठा लिया,—प्यार भी किया और अपने नेत्रों के आँसू भी उसके कपोलों पर गिराये,—बोला वह एक शब्द भी नहीं।

मुनिया का पिता, जो रिश्ते में दातादीन का भाई लगता था, यह समाचार पाकर जङ्गल से दौड़ा आया और सीधा दातादीन के घर पहुँचा। आदमी सूझ-बूझ का था। तुरन्त दातादीन को साथ ले गाँव के दो-चार और निकालू[1] आदमियों से मिला, सलाह-मशवरा किया और उनके साथ थाने की ओर चलदिया।

१. माने हुए चलते पुर्जे आदमी।

दारोगाजी की २००) से भेंट-पूजा की गई, तब जाकर कहीं चन्दू की जमानत हुई। यह रकम उस समय मुनिया के पिता ने अपने पास से अदा की, जिसका भुगतान दातादीन ने घर जाते ही रमधनिया की दो चीजें बेचकर दिया। चाँदी की यह वही दो चीजें थीं जो दातादीन ने चन्दू की शादी में बहू को चढ़ाई थीं।

चन्दू हवालात से छूटकर घर पहुँचा तो चन्दू की माँ ने उसकी लाख-लाख बलाएँ लीं और प्यार के आवेश में उससे लिपटगई। उसका मातृ-स्नेह उमड़ आया और उसके प्रवाह में चन्दू की सब नालायकी न जाने कब और किस ओर बहगई। उसका ध्यान भी नहीं जासका उस ओर। दातादीन चन्दू को पुलिस से छुड़ा लाया,—चन्दू की माँ को अभिमान था अपने पति पर, उसकी बहादुरी और योग्यता पर।

दातादीन चन्दू को छुड़ा अवश्य लाया लेकिन उसके दिल पर बहुत गहरी चोट लगी। उसे शर्म आने लगी अब गाँव में भाई-बिरादरी के अन्दर बातचीत करते। उसकी गरीबी कभी उसकी शर्म का कारण नहीं बनी थी, परन्तु उसके चन्दू की गिरफ्तारी ने उसका स्वाभिमान उससे छीन लिया। उसे वह अपने में ही कुछ हेय-सा, कुछ कम-सा, कुछ निर्बल-सा जचने लगा। वह अब सभी से अपने को बचाकर चलने का प्रयत्न करता था।

चन्दू की गिरफतारी का प्रभाव रमधनिया पर भी पड़ा और उसे लगा कि मानो अब गाँव की स्त्रियाँ उससे मिलने में कुछ कतराती थीं। यदि मिलती भी थीं तो सहानुभूति के साथ नहीं, सहृदयता के साथ नहीं। शायद वह यह भी समझती हों कि चन्दू चोरी का माल रमधनिया को लाकर देता था और रमधनिया अपने पति के सब लच्छनों को जानती थी,—छुपाती थी।

परन्तु रमधनिया से चन्दू की कभी कोई घनिष्टता की बात नहीं हुई। आज रमधनिया ने निश्चय किया कि वह चन्दू से अवश्य बातें करेगी; परन्तु कहाँ,—उसे तो उल्टी मार खानी पड़ी। चन्दू ने आज रम-

धनिया को बहुत मारा,—बहुत मारा। चन्दू की माँ ने भी चन्दू को मारने में प्रोत्साहन न देकर बहू को बचाने का ही प्रयास किया परन्तु इस बचाने-बचाने में एक लात उसे भी खानी पड़ी और वह चारों खाने चित्त होकर एक ओर गिर पड़ी।

चन्दू माँग रहा था रमधनिया से वही दो चीजें,—शराब पीने के लिए, जिन्हें बेचकर उसे हवालात से छुड़ाया गया था,—वह क्या जाने ? रमधनिया के कहने का उसे विश्वास नहीं था। इसी समय अकस्मात दातादीन वहाँ आगया। दातादीन बुढ़ापे में भी शेर था। गर्जकर बोला,—"क्या बात है बहू ?"

बहू कुछ नहीं बोली, केवल रोती भर रही।

दातादीन कुछ न समझ सका। एक ओर पड़ी चन्दू की माँ चीख पुकार कररही थी अपने पेट को पकड़े।

दातादीन चन्दू की ओर लाल पीली आँखें निकाल कर बोला,—"शर्म-हया नहीं रही नालायक ! सब पर हाथ उठाता है,—माँ पर भी हाथ छोड़ बैठा,—मुझे बतला तू क्या चाहता है ?"

चन्दू बोला नहीं एक शब्द। चुपचाप घर से बाहर हो गया।

चन्दू के चले जाने पर दातादीन बोला,—"कर्मों की गति है। दोष मेरा ही है कि इस नालायक की शादी की। मैं समझा था कि शादी होकर रास्ते पर आजायगा। लेकिन यह न सुधर सका.....।" इतना कहकर दातादीन चुप होगया। उसका सिर चकरा रहा था। वह जैसे आया था उसी तरह घर से निकल जाना चाहता था, लेकिन इसी समय दुआरी के बाहर से झुनिया दौड़ीहुई आई और आकर दातादीन से लिपटगई।

दातादीन बाहर जाता-जाता झुनिया को गोद में लेकर फिर अन्दर लौट आया और कितनी ही देर तक उसे गोद में लिए कोठे के सामने दालान में घूमता रहा,—घूमता रहा और न जाने क्या-क्या सोचता रहा।

रमधनिया ने खाना बनाने के लिए उपलों का उभीना लगा दिया और चूल्हे के पास सरसों का साग इच्छाने के लिए बैठगई । फिर उसने साग को दराँती से काटा और पतीली में भर कर आँच पर चढ़ा दिया । चन्दू की माँ भी आँखें पौंछकर उठखड़ी हुई और अपने काम में लगगई ।

झुनिया अब खूब बातें छौंकने लगी थी । दातादीन की लम्बी-लम्बी मूँछों को भी जब-तब पकड़ लेती थी । प्यार से उसकी गर्दन में लिपट कर बोली,—"बाबा हमें बापू कभी गोदी नहीं लेता ।"

"वह नालायक है बेटी !" दातादीन ने झुनिया को छाती से लगा कर कहा,—"तेरी माँ तो प्यार करती है तुझे । दुनियाँ में सभी लोग प्यार करने के लिए पैदा नहीं होते ।"

"क्यों नहीं होते बाबा ?" झुनिया ने आश्चर्य से पूछा ।

"उनका दिल पत्थर का होता है । वह बदमाश होते हैं ।" दातादीन कहता गया ।

"पत्थर का दिल !" कहकर झुनिया हँस पड़ी । "झूठ, बिल्कुल झूठ, बहका रहे हो बाबा ! दिल भी कहीं पत्थर का होता है ।"

दातादीन कुछ बोला नहीं, चुप हो गया । उसका मन चन्दू की तरफ से इतना कुन्द था कि उसके विषय में बात चलने से उसके दिल का घाव हरा होजाता था । वह धूर्त्त क्या जाने कि उसने दातादीन की दुनियाँ ही बदल दी । चन्दू की इन हरकतों से कभी-कभी दातादीन उसकी माँ पर भी झल्ला उठता था और इधर-उधर की अनर्गल बातें भी कह डालता था,—एक झगड़ा-सा हो जाता था दोनों के बीच; परन्तु बहू बीच में पड़कर कभी उसे आगे नहीं बढ़ने देती थी । हर बात को भाग्य पर टाल देने का सुगम गुर उसने सीखा था ।

दातादीन झुनिया को उसकी माँ के पास गोदी से उतार कर चुप-चाप घर से बाहर जाने लगा तो रमधनिया ने घूँघट की ओट से ही धीरे से कहा,—"खाना अभी बना जाता है ।"

"अच्छा बहू !" दातादीन ने कहा और वह दुवारी में होकर बाहर गली में निकल गया। रमधनिया अपनी सास और दातादीन के खाने का बहुत ध्यान रखती थी।

दातादीन अकेला कभी-कभी एकान्त में बैठकर सोचता,—'क्या कुदरत है भगवान् की ? बाप जुआरी-भण्डारी और उसकी बेटी एक देवी ! रमधनिया दातादीन की दृष्टि में एक आदर्श स्त्री थी,—साक्षात् देवी। दूसरी ओर उसका बेटा चन्दू''''बस इससे आगे उसकी विचार-धारा मौन हो जाती थी। परन्तु अपने विचार से अब वह क्षमा नहीं कर पाता था चन्दू की माँ को। चन्दू के बिगड़जाने का उसी को वह प्रधान कारण समझता था और साथ ही अपनी मूर्खता पर भी उसे तरस आता था कि उसने कभी उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। औरत का भरोसा किया। दातादीन के जीवन का पहला उठान कितना शान-दार था, कितना स्वाभिमान पूर्ण, कितना गौरवयुक्त,—बुजुर्गों का कर्ज उसने उतारा, परन्तु जीवन के अन्तिम काल में उसका सिर कर्ज के भार से दबा जा रहा था, उसकी गर्दन टूटी जारही थी।

क्यों ? दातादीन ने सहयोग दिया था अपने पिता के काम में, बल दिया था उनकी बूढ़ी हड्डियों में अपनी इस्पाती हड्डियाँ जोड़कर। दातादीन की भुजाओं पर चमकने वाली मछलियों को देखकर कार्य की कठिनाई आगे-आगे हो लेती थी, आसान होजाती थी। और आज उसके थके-माँदे शरीर के सामने वही कठिनाई अपना विकराल रूप धारण किये उपस्थित थी।

दातादीन का हाथी-जैसे शरीर वाला चन्दू, जिसके जमीन पर एड़ी मारने से पानी निकल सकता था, दातादीन के साथ जीवन-संघर्ष में सहयोग करके नहीं चलरहा था, बल्कि उल्टा उसे पीछे ही घसीटता जाता था।

कभी-कभी वह एकान्त में बैठकर काँप उठता था रमधनिया के भविष्य पर। यदि दातादीन अपने जीवन-काल में साहूकार का रुपया

चुकता न कर पाया तो वह निश्चय ही एक दिन रमधनिया और झुनिया को इस घर और जमीन से बेदखल करा देगा। चन्दू से उसे कोई आशा नहीं थी।

वह दिन अवश्य आयगा,—उसे आज ऐसा लगा।

चन्दू को सुधारने का दातादीन ने कोई प्रयास ही न किया हो, ऐसी बात नहीं थी। प्यार से, मार से, डाँट से, फटकार से, लोभ से, लालच से, सभी तरह समझाया, परन्तु सब व्यर्थ,—सब फिजूल। भाई-बिरादरी वालों ने समझाया, नाते-रिश्तेदारों ने कहा-सुनी की, परन्तु चन्दू के कान पर जूँ तक न रेंगी। पता नहीं उन रमला और कन्नू ने उसे क्या घोलकर पिलादिया था कि उनके साथ बैठना वह न छोड़ सका। अपने माता-पिता, बहू, बच्ची,—सभी को छोड़ना उसे मंजूर था, परन्तु उन चारों को छोड़ना उसे मान्य नहीं था।

रमला और कन्नू के कहने से ही उस दिन चन्दू अपनी सीता-सी पतिव्रता स्त्री को पिशाच की तरह मारने पर जुटगया था। इन्हीं की चौकड़ी ने उसे अपने बीमार माता-पिता की सेवा से वञ्चित करे दिया था। इन्हीं के साथ रहकर उसका नाम पुलिस के रजिस्टर में दर्ज हो गया और अब रोजाना पुलिस का सिपाही उसकी निगरानी के लिए आता था,—आज कल रमला और कन्नू ही मानो उसके लिए सब-कुछ थे, विधाता थे।

शायद उनकी जिन्दगी के कुछ ऐसे गहरे राज बन गये थे कि जिनका महत्त्व उनके जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठा था।

अब तो दातादीन ने कुछ दिन से चन्दू के विषय में सोचना ही बन्द कर दिया था। दातादीन को अब रमधनिया और झुनिया के ही जीवन की चिन्ता थी। यदि किसी प्रकार वह साहूकार का कर्ज अदा कर पाता तो कभी अपनी सम्पत्ति का वारिस चन्दू को न बनाता,—रमधनिया को ही सौंपता अपना सब-कुछ,—इस समय दातादीन की यही इच्छा थी।

दातादीन ने लाख मेहनत की, लाख सिर पटका, लाख चित्त-पट्ट करने का प्रयास किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी अपनी आमदनी न बढ़ा सका। कभी कोई, तो कभी कोई आपत्ति उसके मार्ग में आई और फसलें कभी भी पौ-बारह की न हो पाईं। एक साल ओला पड़ गया, पकी-पकाई फसल जमीन से मिल गई। तीसरे वर्ष टिड्डी-दल कहीं से आकर दातादीन के गाँव पर टूट पड़ा और खेत-के-खेत मय चारे तक चट कर गया,—गाय बैलों को भी मुसीबत होगई। इसी तरह एक-एक वर्ष बीच में छोड़कर दैविक विपत्ति का दातादीन को सामना करना पड़ा।

चन्दू की परेशानी भी जब-तब बीच में आकर खड़ी हो ही जाती थी, सो अलग।

साहूकार के प्रथम तीन वर्ष की मियाद समाप्त होने पर साहूकार ने असल में सूद जोड़कर दूसरा कागज लिखा लिया था, परन्तु इस बार वह दूसरा कागज बदलने के लिए तैयार नहीं था। दातादीन का थार, साहूकार, घर का सब कामकाज अपने बेटे के सुपुर्द कर जप-तप करने, जीवन भर के पाप काटने और स्वर्ग का रास्ता तय्यार करने, बनारस चला गया था। वह अब बनारस में ही किसी घाट पर रहता था।

साहूकार का बेटा जब किसी तरह न मुचा और कागज बदलने के लिए तैयार न हुआ, तो दातादीन की चिन्ता का कोई ठिकाना न रहा। वह अन्दर-ही-अन्दर घुलने लगा,—मानो घुन लग गया था उसके शरीर को। रमधनिया से वह क्या कहे,—अक्ल काम नहीं देरही थी।

रुपया लौटाने का कोई प्रबन्ध नहीं था दातादीन के पास। उसने लाख जाकर समझाने की कोशिश की लेकिन साहूकार का बेटा तनिक भी न पसीजा,—वह अपने पिता से कहीं अधिक कठोर निकला।

रमधनिया चन्दू का मुख देखती और सोचती,—'कितना अच्छा होता यदि वह ससुरजी का हाथ बँटाता उनके काम में। हमारे भाग खुल जाते। हमारे सब दुख-दिलद्दर पार होजाते। ससुर जी के जीवन

का आखिरी समय सुख और शान्ति से कट जाता।' परन्तु कहाँ,—चन्दू का तो ढङ्ग ही बेढङ्गा था। न समय पर आना, न समय पर जाना, न समय पर खाना, न समय पर पीना, न ढङ्ग से बोलना, न ढङ्ग से बैठना,—सब कुछ बेढङ्गा था उसका। उसका जीवन मानो उसके ही लिए था, स्वार्थ का जीवन। झुनिया भूली-भटकी यदि कभी चन्दू के पास को निकल भी जाती थी तो फटकार ही सुनती। रमधनियाँ ऐसे काँपती थी,—मानो कसाई से गाय। क्या मजाल जो कभी साहस के साथ चन्दू के सामने खड़ी होकर एक शब्द भी कह सके। न अपनी कहना, न उसकी सुनना।

परन्तु आज चन्दू ने झुनिया को न जाने कैसे गोद में उठा लिया। प्यार भी किया उसने झुनिया को और चुमकारा भी। रमधनिया ने यह देखा तो वह स्तम्भित-सी रहगई,—मानो कुछ ऐसा हुआ जो इस सन्सार में सम्भव नहीं, असम्भव था। उसका रोम-रोम खिल उठा। उसकी बच्ची को चन्दू ने प्यार से चुमकारा, उसे स्वर्ग मिल गया,—स्वर्ग का आनन्द।

चन्दू ने गोद से झुनिया को उतारा तो वह दौड़कर सीधी रमधनिया के पास जाकर प्रसन्नता से खिलती हुई बोली, "माँ...माँ....बापू ने मुझे गोदी लिया,—प्यार किया, चुमकारा।"

"अच्छा!"कह कर रमधनिया ने झुनिया को गोद में उठा लिया। वेदना को अपने आँचल में ढक लेने वाला सुख उसे प्राप्त हुआ।

परन्तु सन्ध्या को दातादीन घर आया तो उसकी गर्दन लटकी हुई थी। उसकी चाल में दम नहीं था। उसका शरीर अनायास ही घर की ओर ढुलका चला आरहा था,—प्रयास-विहीन। कन्धे की चादर नीचे घिसटती आरही थी और हाथ की लाठी भी लड़खड़ा रही थी, मुट्ठी ढीली पड़ रही थी दातादीन की।

दातादीन जिन्दगी से थक चुका था, ऊब चुका था,—वह एक निर्बल, असहाय और असफल पथिक था,—जीवन की महत्त्वाकाँक्षाओं को

फलीभूत करने में नितान्त असफल। उसने जीवन भर प्रयास किया, मेहनत की, मजदूरी की, परन्तु सफलता न मिल सकी। भाग्य को कोसने से भी आज क्या लाभ ? वह मौन था, शब्द-विहीन।

दातादीन की टाँगों से घर में घुसते ही झुनिया लिपट गई। दातादीन ने उसे गोद में उठा लिया। झुनिया ने अपने को चन्दू द्वारा प्यार किये जाने की कहानी प्रफुल्लित होकर कही, परन्तु दातादीन ने मानो कुछ सुना ही नहीं। वह झुनिया को गोद में लेकर दालान में पड़ी खटिया पर बैठ गया,—उसका सिर चकरा रहा था।

दातादीन की यह दशा देखकर रमधनिया समझ गई कि अवश्य कुछ दाल में काला है। उसने उठकर झुनिया को अपनी गोद में लेते हुए घूंघट की आट से पूछा—"आज बहुत परेशान से दीख रहे हो।"

"हाँ बहू ! परेशानी के लिए ही विधाता ने मुझे बनाया है।" गम्भीरता पूर्वक दातादीन बोला। "लेकिन आज मैं तुझे बता देता हूँ बहू ! क्यों कि मेरे मरने के बाद यह सब परेशानी तेरे ही सिर पर तो आनी है।"

"आप लेट जाँय, परेशान न हों। मुझपर जो कुछ भी मुसीबतें भगवान् डालेगा, उन्हें मैं सहन करूंगी। आप को दोष नहीं दूंगी।" रमधनिया ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

दातादीन ने गहरी साँस ली और चादर सिर के नीचे रख कर खटिया पर लेट गया। रमधनिया से बोला, "बहू ! बहुत से बुजुर्ग अपने बालकों को मरते समय धन-दौलत छोड़कर मरते हैं परन्तु मैं यह सब नहीं कर सकूँगा। चन्दू ने मेरी जिन्दगी का सहारा तोड़ दिया। मुझे एक नाकामयाब आदमी बना दिया। मैंने इधर छै साल तक अकेले भी कोशिस की, लेकिन भाग्य कहूँ या विधाता,—उसने साथ नहीं दिया। चन्दू की शादी में मैंने अपने पास की सब जमा पूंजी के साथ पंद्रह सौ रुपया अपने सब आसामे पर कर्ज लेकर भी लगा दिया था। उसका

भुगतान में आज तक न कर सका। अब ऐसा लगता है कि शायद कर भी न सकूंगा।" कहते-कहते दातादीन की जबान रुकगई और मस्तक पर पसीना आगया। नेत्र बन्द होगये और नासिका के पास नेत्रों के दोनों कोनों में दो मोटे-मोटे आँसू झलक आये।

रमधनिया एक क्षण मौन रहकर गम्भीरता पूर्वक बोली,—"आप आराम से बैठें। मन भारी न करें। भाग्य में जो लिखा है, वह अवश्य होगा। आप रोक नहीं सकते,—कोई रोक नहीं सकता। यदि मेरे भाग्य का दोष न होता तो आपका बेटा ऐसी कुसङ्गति में ही क्यों पड़ता ?" इससे आगे रमधनिया भी कुछ कह न सकी। उसकी जबान रुक गई।

मानो इस सारी दुर्दशा का एकमात्र कारण चन्दू ही था,—और था भी वह,—वह।

दातादीन के प्राणहीन शरीर में रमधनिया के गम्भीर शब्दों ने एक बार फिर से प्राणों का सञ्चार कर दिया। उसने झुनिया को उठा कर अपनी छाती पर लिटा लिया और बहुत देर तक उसी तरह आँखें बन्द किये लेटा रहा।

रमधनिया चूल्हे पर जाकर खाना बनाने में लगगई।

: ५ :

चन्दू आज कई दिन से गायब था। पुलिस उसकी तलाश में थी। दातादीन के दोस्त साहूकार के घर डाका पड़ा था और उसी में चन्दू का भी नाम निकला हुआ था। पुलिस रोजाना दातादीन के घर पर आती थी, बुरा-भला कहती थी, डाटती-डपटती और फटकारती थी,—दातादीन सब सहता, उनके कठोरतम शब्दों को शर्बत के घूँट की तरह पीता और चुप रह जाता था। चुप रहना और सहना ही मानो अब उसके जीवन का गुण बन गया था। जवानी की वह अकड़ और लाठी लेकर तनते हुए चलना, जीवन से लुप्त होचुका था।

"बूढ़े! बतलायेगा या नहीं चन्दू का पता-ठिकाना।" पुलिस के दीवान ने झल्ला कर कहा, और उसका झल्लना भी ठीक था। उसे क्या पता था कि दातादीन-सन्त के घर चन्दू डाकू पैदा हुआ था। वे कई दिन से परेशान थे चन्दू की खोज में।

"मुझे भगवान् के लिए तङ्ग न करो दीवानजी! उस नीच का मुझे कुछ पता नहीं।" गिड़गिड़ा कर दातादीन ने कहा।

"अब क्यों पता होने लगा है उसका? उसका पता तो तब रहता था जब वह दुनियाँ का माल लूट-लूट कर तेरा घर भरता था बूढ़े!" दीवान के साथ वाले सिपाही ने कड़क कर कहा और अकड़ कर बोला,—"अगर नहीं बतलायेगा तो हम तुझे ही लेजाकर हवालात में बन्द करदेंगे।"

"घर जैसा मेरा भरा है चन्दू ने, यह तो मेरा ही दिल जानता है सरकार ! चूल्हा भी आज बुढ़ापे में किस तरह चलाता हूँ यह कहने की बात नहीं; लेकिन हाँ, यदि इस बूढे को ही हवालात में बन्द करने से तुम्हारी तसल्ली होती हो तो मैं हाजिर हूँ; मुझे ले चलो।" दातादीन बोला।

इतने में गाँव के कुछ और लोग वहाँ आगये। कुछ तो कनखियों से मुस्करा रहे थे, परन्तु कुछ दातादीन के साथ वास्तविक सहानुभूति रखने वाले भी थे। मुनिया का बाप रामू दातादीन के सच्चे हमदर्दों में से था। आगे आकर दीवान से बोला,—"दीवानजी ! दातादीन को व्यर्थ तङ्ग करने से आपको कोई लाभ न होगा। यदि दातादीन का कहा चन्दू करता तो आज इस घर की यह दुर्दशा ही न होती। दातादीन जैसा ईमानदार और मेहनती आदमी इस गाँव में दूसरा न मिलेगा।"

मुनिया के बाप के शब्दों में जान थी, बल था, जिसका गाँव के सभी लोगों ने समर्थन किया। कोई कुछ भी खिलाफत में न कह सका,—वातावरण शान्त हो गया। खिलाफ विचार रखने वालों की बातें भी उनके हलक में ही सूख गईं। मुनिया के बाप की खिलाफत में एक शब्द भी कहने का किसी में दम नहीं था। दीवान मुस्करा कर आंखें मटकाकर तिरछी करते हुए बोला,—"तब फिर चन्दू कहाँ है ?"

"वह कहाँ है और कहाँ नहीं है, इसकी सूचना ही यदि वह दातादीन को देता रहता तो वह इतना खराब आदमी कभी न बनता। आप लोगों को उसे खोजने के लिए इस तरह मारा-मारा न फिरना पड़ता।" गम्भीरतापूर्वक मुनिया के बाप रामू ने उत्तर दिया और अपनी वाक-पटुता से पुलिस पर यह सिद्ध कर दिया कि दातादीन चन्दू के भाग जाने के विषय में कुछ नहीं जानता, बिलकुल अनभिज्ञ है, निरपराध है और उसे तङ्ग करने से पुलिस के हाथ-पल्ले कुछ न पड़ेगा।

रमधनिया उदास अपने दालान में बैठी चर्खा कात रही थी। उसे कताई का सूत देना था। गृहस्थी चलाने का यह भी एक साधन था।

दो दिन से घर के चूल्हे में आग नहीं सुलगी थी। झुनिया को मुनिया ही अपने घर ले जाकर खाना खिलादेती थी। दातादीन और रमधनिया के हलक से नीचे खाना नहीं उतरता था। चन्दू की माँ तो पगली-सी होगई थी। रात-दिन खाट में पड़ी-पड़ी चन्दू-ही-चन्दू की रट लगाती रहती थी। उसे सुध नहीं रहगई थी अपनी। पिछली बीमारी से वह स्वस्थ तो हुई थी परन्तु कुछ खपत-सा रहता था उसके दिमाग में। उसे कुछ काम ही नहीं था रमधनिया को कोसने के अलावा। वह रमधनिया को ही इस घर के सर्वनाश का कारण समझती थी। इसी समय झुनिया को साथ लिए मुनिया आई और रमधनिया के पास बैठकर बोली,—"बहू! तुमसे आज एक बात करने आई हूँ।"

"हाँ ननदजी!" रमधनिया ने चरखा थाम कर मुनिया के मुँह पर दृष्टि डालते हुए कहा।

"इस तरह भूखी रहकर प्राण देना कोई अकल की बात नहीं। जरा अपनी झुनिया की ओर देख। इसका इस दुनियाँ में तेरे अलावा और कोई नहीं। ताऊ और ताई सदा नहीं रहेंगे। चन्दू के ठीक होने की मुझे कोई उम्मीद नहीं,—और फिर अब तो पुलिस उसके पीछे लग गई है। पुलिस जिसके पीछे एक बार लग जाती है उसे कहीं का नहीं छोड़ती। शिकारी कुत्तों की तरह हर वक्त ताक-झाँक में ही फिरती रहती है। ऐसी दशा में तेरा खाना न खाना बड़ी भारी नादानी है। मैं कहती हूँ कि यदि तू अपने लिए न खाये तो कोई बात नहीं, परन्तु तुझे अपनी झुनिया के लिए तो खाना खाना ही होगा। तूने जन्म दिया है झुनिया को और इसके लिए तेरा कुछ फर्ज है।" मुनिया ने गम्भीरता-पूर्वक सहृदयता के साथ समझाया। मुनिया व्याकुल थी इस समय रमधनिया और झुनिया की दशा देखकर। उनके हृदय से सहानुभूति उमड़ी पड़ रही थी।

रमधनिया की दृष्टि झुनिया के अबोध चेहरे पर गई और वह फूट-फूट कर रोपड़ी। उसने झुनिया को अपनी अङ्क में छुपा लिया।

झुनिया भी साथ-साथ रोने लगी,—बिना यह जाने कि क्या कारण है रोनेका,—माँ जो रही थी उसकी।

मुनिया ने रमधनिया का चरखा उठाकर एक ओर रख दिया और स्वयँ उसके चूल्हे में आग सुलगाई। एक पतीली में दाल रँधने चढ़ादी और पारात में आटा उसन दिया। फिर चली गई दातादीन को घेर से बुलाने,—खाना खाने के लिए।

रमधनिया ने खाना बनाया,—सोचती जाती थी कि क्या उसे खाना खालेना चाहिए? उसका पति चन्दू कहाँ और किस दशा में था उसे इस बात की चिन्ता थी,—परन्तु वह उसके लिए कुछ नहीं कर सकती थी। चन्दू की हृदयहीनता ने रमधनिया के जीवन को विशृङ्खल कर दिया था,—पगली-सी बना दिया था उसे। उसकी एक मात्र देन झुनिया थी उसके पास और झुनिया का इस समय रमधनिया को बड़ा सहारा था। झुनिया जब कुछ कहती थी तो उसका एक-एक शब्द रमधनिया के हृदय के हजार-हजार कष्टों को खींचकर बाहर लेआता था, शीतलता प्रदान करता था उसके हृदय की गम्भीर जलन को, खो देता था उसकी उदासीनता को और उसके जीवन के शान्त प्रवाह को एक उत्साह और उमङ्ग प्रदान करता था। उसे झुनिया के शब्द सुनकर ऐसा लगने लगता था कि वह अभी जिन्दा है, उसकी नसों में रक्त बहता है, उसके कान कुछ सुनते हैं, उसके नेत्र कुछ देखते हैं और उसके शरीर में अभी जीवन के आसार बाकी हैं। जब रमधनिया झुनिया को प्यार से अङ्क में भरती थी तो उसे अपने जीवन की नीरसता का आभास मिलने लगता था। रमधनिया के जीवन के शान्त सरोवर में झुनिया का जीवन एक उभर कर आने वाली मीठी-मीठी तरङ्ग थी, प्रसन्नता थी, उल्लास था जो गमगीन-से-गमगीन वातावरण में भी एक तरङ्ग की रेखा खींच देता था।

मुनिया के कहने से दातादीन उठ तो आया परन्तु खाना खाना उसके लिए कठिन था। उसका जीवन-प्रवाह अब बहुत ही शिथिल-सा

हो गया था। कुछ सोच-विचार वह कर नहीं पाता था। चन्दू ने दातादीन के जीवन का क्रम-ही बदल दिया। वह घर आया तो झुनिया नित्य की भाँति आकर पैरों से लिपटगई और उसका उदास चेहरा देखकर बोली,—"बाबा! तुम लुँआछे से न लहा कलो।"

"नहीं बेटी! मैं रुआँसा भला क्यों रहूँगा।" इतना कहकर दातादीन ने झुनिया को गोद में उठालिया और उसे लिये-लिये ही चन्दू की माँ के पास गया। वह कोठे में पड़ी आप-ही-आप सिसक रही थी। दातादीन ने उसे भी समझाया।

खाना बन गया। झुनिया परस कर लेआई। झुनिया ने थाली के पास बैठ कर बाबा को खाना खिलाया,— दातादीन को खाना खालेना पड़ा,—उसने समझ लिया चन्दू मर गया,—उसके लिए मर गया,—उसके परिवार के लिए मरगया।

दो दिन पश्चात् पता चला कि चन्दू को पुलिस ने कहीं से खोज निकाला। रमला और चन्दू दोनों साथ-साथ किसी देसी शराब के ठेके पर शराब खरीदते पकड़ेगये। कन्नू को पुलिस पहले पकड़ चुकी थी।

इन तीनों के पकड़े जाने से गाँव के लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी कहते थे,—'जो जैसा करता है, वैसा ही भरता है। जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। अच्छा हुआ तीनों पाजी पकड़ लिए गये। गाँव भर के नाक में दम था। आज किसी का खेत काट लिया, तो कल किसी के भुस का बूँगा तोड़ लिया, किसी के उपलों के बिटौड़े[1] में से चार हेल उपले निकाल लिए तो किसी का रात को छोटा-मोटा पेड़ ही काट लाये, किसी के घर में कूमल फोड़ लिया तो किसी के जानवरों में से ही एक दो को नौ-दो ग्यारह कर दिया। पुलिस इन्हें लेगई तो गाँव सुख की नींद सोया।—चैन की बंसरी बजाई, गाँव ने।

साहूकार के बेटे ने दातादीन का नाक में दम किया हुआ था। वह अपने रुपये के लिए तकाजे पर तकाजा कर रहा था और दातादीन के

१. उपले या कण्डे बिटौड़े में एकत्रित किये जाते हैं।

पास रुपये का कोई प्रबन्ध नहीं था। इस डाके के बाद से तो साहूकार का बेटा और भी खूंखार हो गया था, मिटा देना चाहता था वह दातादीन को। व्यर्थ के लिए किसी की धमकियाँ खाना दातादीन को भी बर्दाश्त नहीं था। उसने आज स्पष्ट कर दिया,—"तुझे जो करना है सो कर, व्यर्थ की धमकी देना फिजूल है। तेरे बाप से दोस्ती का सम्बन्ध था, इसीलिए मैंने बोलना ठीक नहीं समझा। लेकिन जब तू तुल ही बैठा है मुझे बरबाद करने पर, तो कर। मैं तुझे रोक ही भला किस तरह सकता हूँ।"

साहूकार का बेटा उधारा-सा रह गया। जो कुछ भी धमकी वह दे रहा था,—इसलिए देरहा था कि उनकी दाब में आकर दातादीन रुपया उगल देगा। परन्तु दातादीन के पास जब कुछ हो, तब तो! उसके पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी जहर खाने के लिए। "मेरे हाथ पैर थक चुके। चन्दू आवारा निकल गया। पैदा कम हो गई। जमीन कोई यों ही नाँवा थोड़े ही उगलती है।" गम्भीरतापूर्वक दातादीन बोला।

"तो, मेरा रुपया मारा गया, इसका मतलब यह हुआ?" साहूकार के बेटे ने पूछा। आश्चर्य से उसके नेत्रों के डोरे खिंच गये,—आसमान से मिल गये।

"किसी का रुपया मारलेने की नीयत में नहीं रखता। कौड़ी-कौड़ी और पाई-पाई चुकता करना चाहता हूँ। लेकिन मेरे पास देने के लिए कुछ हो भी तो! मेरी हड्डियों से यदि अपना रुपया निकाल सको तो निकाल लो!" दातादीन बोला। दातादीन इस समय साहूकार के बेटे को बहुत घृणा की दृष्टि से देख रहा था।

"अपने बैल बेच डालो, भैंस बेच डालो,—हड्डियों से निकाल लेने की बात क्यों चलाते हो!" त्यौरी चढ़ा कर साहूकार के बेटे ने कहा।

"देख, त्यौरी न चढ़ाना बेटे! त्यौरी तो कभी तेरे बाप की भी चढ़ती मैंने नहीं देखी। तेरा रुपया मुझे जरूर देना है, लेकिन तेरे बाप पर मेरे क्या-क्या ऐहसानात हैं, तू क्या जाने?" कड़क कर दातादीन ने

कहा और क्रोध से उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा । मुँह तमतमा उठा ।

"बाप पर होंगे एहसानात, मुझ पर किसी का कोई एहसान नहीं है । मैं पूछ रहा हूँ कि तुम्हारे पास मेरा रुपया देने की क्या सबील है ? देना चाहते हो या नहीं ? साफ-साफ कहिए । मैं साफ जवाब चाहता हूँ ।" इतना कहकर साहूकार का बेटा अपने चिकन के कुर्त्ते की बाँहों को धीरे-धीरे ऊपर की चुनने लगा ।

"तुम्हारा रुपया पाई-पाई देना चाहता हूँ । लेकिन देने की कोई सबील इस समय मेरे पास नहीं है ।" सरलतापूर्वक दातादीन ने कहा । उसके कथन में सचाई थी, फरेब नहीं । साहूकार का रुपया मारने की उसकी नीयत नहीं थी । इतना कड़ा जवाब भी वह इसलिए दे रहा था कि उसके पास रुपया नहीं था और उसे रुपया देने पर मजबूर किया जारहा था । वह दे कहाँ से ।

यदि साहूकार का बेटा असल में सूद जमा करके कागज बदलवाने की बात करता तो दातादीन को जरा भी इन्कार न होता । दातादीन से हल-बैल बेचने की बात कहकर तो मानो साहूकार ने उसके सिर की पगड़ी ही उतार ली,—लेकिन वह चुप रहा । उसे बोलने लायक नहीं छोड़ा उसके चन्दू ने ।

"तब मैं जो चाहूँ सो करूँ ?" साहूकार का बेटा सरलतापूर्वक व्यंग्य से बोला ।

"मैं रोक किस तरह सकता हूँ तुझे ?" दातादीन ने उत्तर दिया । "मैं नहीं चाहता कि मेरे और तेरे खान्दान के इतने पुराने सम्बन्ध इस तरह....."

"अजी खान्दान-वान्दान की बात छोड़ो !" साहूकार का बेटा दातादीन की बात बीच में ही काटकर एक अजीब ढङ्ग से मुस्कराते हुए बोला,—"खान्दान-वान्दान किसने जाने !"

दातादीन मूर्ख नहीं था । साहूकार के बेटे का इस तरह उसकी

बात को बीच में काट कर मुस्कराने का क्या अर्थ था यह वह ख़ूब जानता था परन्तु बोला एक शब्द नहीं; ख़ून का घूँट पीकर रहगया। खान्दान के जिस नाम पर उसे अभिमान था और जिसके लिए वह आज तक मरा और मिटा था, उसीको चन्दू ने खाक में मिला दिया। लाख की आबरू खाक करदी। वरना क्या मजाल थी इस साहूकार के बेटे की कि जो एक शब्द भी कह पाता। इसकी कलई दातादीन से छुपी नहीं थी। इसी की माँ जो एक जोगी के साथ शहर को भाग गई थी और छै महीने उसके पास रही थी। फिर इसी दातादीन की भुजाओं के बल पर साहूकार अपनी पत्नी को प्राप्त करने के लिए शहर को रवाना हुआ था और आखिर यही दातादीन उसे पाँच बदमाशों के बीच से निकाल कर लाया था। कहते हैं वहीं वहाँ से जो माल असबाब लाई थी उसीकी बदौलत वह साहूकार और यह साहूकार का बेटा बनगया। लेकिन अब उन बीती हुई बातों की फिजूल स्मृतियों से क्या लाभ ? और यदि उनका कच्चा चिट्ठा खोल-खोल कर बखान भी किया जाता तो उससे क्या बनता था। इस समय तो दातादीन कर्जदार था और साहूकार के बेटे को अपना रुपया वसूल करना था।

साहूकार का बेटा चला गया। दातादीन कोई सही जवाब न दे सका। वह दिल से साहूकार का रुपया चुकता करना चाहता था, परन्तु कुछ सबील नहीं थी उसके पास। इसी परेशानी में घर पहुँचा तो भुनिया घर के आँगन में खेलती फिर रही थी। मस्ती में झूम-झूम कर नाँच रही थी और गुनगुना रही थी न जाने क्या-क्या। एक तरफ उसके कई मिट्टी के खिलौने पड़े थे और उन्हीं के पास कुल्हियों और दीवलों का ढेर लगा था।

दीवाली आई थी। दातादीन ने दीवले देखकर समझा, दीवाली आई। रमधनिया ने घर लीप-पोत कर साफ-सुथरा कर दिया था। दुवारी और कोठा सब लीपे थे। सास की गालियाँ और झाड़-फटकारें सुनकर भी लीपे-पोते थे। उसका लाल, चन्दू जेल में बन्द था और यहाँ

दीवाली मनाई जारही थी,—"डायन कहीं की।" बस इतना ही कह-कर वह चुप रहजाती थी। रमधनिया ने अब सास की गालियों और फटकारों पर बिलकुल ध्यान देना बन्द कर दिया था।

"आज दीवाली है", झुनिया ने दातादीन के पैरों से लिपटकर कहा। "बाबा! माँ कहती हैं बरस दिन का त्यौहार है। बाबा खील बताशे लायेंगे। लाओगे न बाबा?"

"क्यों नहीं लाऊँगा अपनी बिटिया के लिए।" कहकर दातादीन ने झुनिया को गोद में उठा लिया। वह भूल गया साहूकार के बेटे के झमेले को, चिन्ताओं को। क्या उसने कहा था और क्या उसने,—उसे कुछ याद न रहा। झुनिया दातादीन की आँखों का तारा थी इस समय। वह झुनिया को गोद में लेकर अपना सब दुःख भूल गया,—खो गया एक विचित्र-सी विचारधारा में। इस समय दुखी नहीं था वह। उसकी अनमोल बच्ची उसकी गोद में थी, उसकी सती साध्वी बहू सामने चूल्हे पर बैठी खाना बना रही थी,—उसके परिवार में सुख फैला हुआ था, वही सुख जो उसने अपने जीवन-भर की कमाई और बाप-दादों की सम्पत्ति को न्यौछावर करके प्राप्त किया था,—खरीदा था भगवान् से। परन्तु चन्दू की माँ की दशा देखकर दातादीन कभी-कभी रो पड़ता था। उसकी फटकारें उसे भी सुननी पड़ती थीं। दातादीन उन्हें प्यार से सुनता और सहानुभूति से भुला देता था। बहू को भी समझा देता था कि कभी चन्दू की माँ को कोई कटु शब्द न कहे; और रमधनिया,—वह तो मानो देवी थी इस मामले में,—सहन करने की देवी। उसे रहम आता था अपनी सास की दशा पर। रमधनिया उस माँ के हृदय की पीड़ा को महसूस करने में नासमझ नहीं थी जिसका इकलौता लाल, कलेजे का टुकड़ा, पुलिस ने सींखचों के पीछे बन्द कर दिया था—माँ की नजरों से दूर, माँ की गोदी से दूर। माँ के हृदय की इज्जत थी रमधनिया की नजरों में, रमधनिया के दिल में।

दातादीन को रगड़ दिया पैसे की समस्या ने,—जीवन को जीवन

न समझ पाया, जीवन एक समस्या ही बना रहा उसके लिए। आज दातादीन ने प्यार से झुनिया को चुमकारते हुए दृढ़ संकल्प किया कि अब अपने शेष दिन जीवन को जीवन मानकर ही काटेगा, जीवन को पैसे की समस्या मानकर नहीं। परिस्थितियों पर उसका अधिकार नहीं, मेहनत से उसने कभी जी नहीं चुराया,—फिर इसके पश्चात् भगवान् जैसे भी उसे रखेगा,—वह रहेगा। भगवान् को जब अपमानित ही करके रखना है उसे तो इसमें उसका चारा ही क्या ? यदि भगवान् को साहूकार की नजरों में उसे नादिहन्द और बेईमान बनाकर ही रखना है तो दातादीन रहेगा,—मरेगा नहीं। जिसके जी में जैसा आये, कहे, परन्तु दातादीन ने अपने जीवन में कभी किसी का बुरा नहीं चीता,—बस उसके लिए यही उसके जीवन का सन्तोष था। लेकिन अब भी वह यूँ ही अपने खेतों को हाथ से नहीं जानेदेगा। उनकी मिट्टी में उसका पसीना मिला था,—जीवन भर मिलता रहा था।

दातादीन झुनिया को गोद में लेकर बाहर निकल गया। बनिये की दूकान पर जाकर उसे खील बताशे दिलवाये और उसकी पूरी झोद भर कर कहा,—"बस बिट्टो रानी ! या और भी लोगी ?"

"और कल।" झुनिया ने कहा—

"कल भी ?" मुस्कराकर दातादीन ने अपनी लम्बी-लम्बी मूँछें प्यार से झुनिया के मुँह पर बिछातेहुए कहा।

"माँ ने कहा है बाबा, दिवाली दो दिन की है।" झुनिया बोली।

"हाँ बेटी, दो दिन की ही होती है दिवाली। आज छोटी दिवाली है, कल बड़ी होगी।"

फिर दातादीन झुनिया को घर छोड़ कर घेर की ओर चला गया। वहाँ कल्लू चमार ने बछड़े के गले में पठियाँ बाँध रखी थीं। गोधन की तैयारी थी। इस पर आज ही दातादीन की दृष्टि गई। दातादीन को आज अपने जीवन में एक नई स्फूर्ति दिखलाई दी। उसने अपनी सम-स्याओं से ऊपर उभर कर जीवन पर दृष्टि डाली। जीवन में अब भी

उसे जान दिखलाई दी, हँसने, बोलने, मुस्कराने, प्रफुल्लित होने और रीझने के अवसर उसे मिले। जिन परिस्थितियों पर उसका वश नहीं, उनकी गर्मी में अपने जीवन-रस को जला-जला कर सुखा डालना दातादीन ने नादानी समझा।

दातादीन मुस्कराकर कल्लू से बोला,—"बहुत अच्छी पठियाँ बनाई हैं कल्लू! तुम्हारा बछड़ा बहुत सुन्दर जच रहा है। कहाँ से पाये थे यह सुन्दर-सुन्दर मोर के पंख?"[1]

"बैलों के लिए भी बनाई हैं चौधरी जी!" कल्लू चमार ने अपनी करामात पर दातादीन की प्रशन्सा सुनकर प्रफुल्लित होते हुए कहा। उसका मुर्झाया हुआ मन खिल उठा। कल्लू को भी आज प्राणहीन दातादीन प्राणवान दिखलाई दिया। उसने भी अपने जीवन में एक नई ताजगी प्राप्त की।

कल्लू ने आज दातादीन से बहुत-सी बातें कीं,—कितने ही दिन की दबी हुई बातें,—कितने ही दिन की रुकी हुई बातें। वह कहता ही गया बहुत-सी बातें और दातादीन भी मुस्करा-कर हाँ-नाँ करता रहा। कल्लू ने कुछ गाँव के आदमियों के खिलाफ कहा, कुछ चन्दू की हमदर्दी में कहा, कुछ पुलिस के खिलाफ कहा, कुछ साहूकार के बेटे के बारे में कहा,—मतलब यह है कि जिन विचारों में दातादीन डूबा रहता था उसने पाया कि कल्लू का मस्तिष्क भी पिछले दिनों उन्हीं पर अपनी अक्ल के अनुसार सोचता रहा था, विचारता रहा था। आज उससे सब बातें कहीं। दातादीन ने महसूस किया कि उसने अपनी समस्याओं में फँस कर न केवल अपना ही जीवन एक समस्याओं द्वारा संचालित यन्त्र बना लिया था वरन् कल्लू की भी उसने वही दशा कर दी थी। कितने दिन पश्चात् कल्लू आज अपने चेहरे पर प्रसन्नता ला पाया।

---

१. मोर की पूँछ के पर जिनसे गोधन के दिन गाय बैलों को सजाने के लिए उनके गले की पठियाँ बनाई जाती हैं। यह जानवरों की वैसी ही श्रृङ्गार की चीज है जैसे स्त्रियाँ गले में गुलूबन्द पहनती है।

दातादीन ने आँटी से खोल कर दो रुपये कल्लू चमार को दीवाली का त्योहार मनाने के लिए दिये और फिर अपने बैलों के पास चला गया। दातादीन ने उनकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। बछड़े की टाँट पर टिटकारी देकर देखी। गैया की थूथड़ी को हाथ में लेकर प्यार से उसके साथ अपना मुँह टिकाते हुए नेत्रों से दो आँसू बहा दिये,—बह गये वह अपने आप, बिना प्रयास ही।

फिर दातादीन अपने घेर के अहाते में घूमने लगा। आज रात दीवाली की थी। दातादीन के घर दीये जले, रौशनी हुई, खील बताशे खाये गये, झुनिया प्रसन्न होकर नाचती हुई आकर दातादीन के पैरों से लिपट गई,—दुनिया यूँही चलेगी,—चलती जायगी और दातादीन भी इस दुनियाँ में रोकर नहीं चलेगा।

: ६ :

चन्दू ने रमला, और कन्नू के साथ साहूकार के घर पड़ने वाली डकैती में भाग लिया,—अदालत ने अपना फैसला दिया। दातादीन ने यहाँ भी अपने पितापन को निभाया। बछड़ा बेच डाला, भैंस बेच डाली और अपना भुसका बूँगा तथा दो बिटौड़े बेच कर वकील खड़ा कर ही दिया अदालत में। पैरवी के लिए मुनिया के बाप के साथ अदालत भी गया, लेकिन चन्दू को न छुड़ा सका।

कैद बुल गई दस साल की,—सख्त कैद।

मन मैला लिए घर लौटा। भगवान् की गति के सामने लाचार था। भाग्य को ही आखिर दोष देना पड़ा। दातादीन घर में दुबारी से अन्दर आकर टूटी खाट पर माथा पकड़े बैठ गया,—बोला एक शब्द नहीं।

चन्दू की माँ दौड़ी आई अपने लाल का समाचार पाने, परन्तु दातादीन की दशा देखकर उसके घुटने टूट गये, वहीं बैठ गई। कुछ पूछने का साहस न हुआ। केवल 'हाय लाल' ही शब्द उसके मुँह से निकला। उसे विश्वास न था कि उसका लाड़-चाव का पाला चन्दू उसे बुढ़ापे में इस तरह धोखा देजायगा। चन्दू की माँ ने एक बार दातादीन के मुख पर तरसते से नेत्रों से देखा और दोनों के अश्रुपूर्ण नेत्र मिलकर एक होगये।

रमधनिया समझ गई। समझने में उसे देर न लगी। वह फूट-फूट कर रोपड़ी। मुनिया बाबा, दादी और माँ तीनों को रोते देख टुल-मुलाती-टुलमुलाती घर से बाहर निकल गई।

रमधनिया को मुनिया तथा दातादीन को मुनिया के बाप ने पूर्ण सहृदयता के साथ समझाया। रात को खाने की इच्छा न रहने पर भी खाना खिलाया और कहा,—"दातादीन कर्मों की गति है। बस यहीं आकर तो आदमी को लाचार हो जाना पड़ता है।"

दातादीन जीवन से थक चुका था। मुनिया के बाप के कन्धे पकड़ कर सहारा लेतेहुए बोला,—"भैया! चन्दू ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा। हर तरह से मोहताज करदिया। आज मुझे अपनी चिन्ता नहीं जितनी ....." कहते-कहते दातादीन की जबान रुक गई। उसकी आँखों के सामने अंधकार छागया। शरीर काँपने लगा।

"दातादीन! पत्थर का दिल करलो, पत्थर का। जो मुसीबत तुम पर पड़ी है उसे हर आदमी महसूस नहीं कर सकता। अपनी मुसीबत को दुनियाँ के सामने गाना भी फिजूल है। लोग रोकर सुनते हैं और हँस कर उड़ा देते हैं। भरनी तुम्हीं को है जो मुसीबत तुम पर आई है। तुम समझ लो चन्दू तुम्हारे घर पैदा ही नहीं हुआ।" मुनिया के बाप ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

और दातादीन ने मुनिया के बाप की बात गाँठ बाँध ली। घेर में जाकर बैठा तो सहानुभूति का स्वाँग रच कर गाँव के बहुत आदमी आये। सभी ने दातादीन के दुख में हमदर्दी की हजार बातें कहीं, परन्तु दातादीन ने सब सुनीं, और समेट कर अपने मन में भर लीं,—कहे केवल गिने-चुने दो-चार शब्द ही,—"भय्या! भगवान् को जो मंजूर था, सो हुआ। मैं कर ही क्या सकता था उसकी इच्छा के सामने, बाप का फर्ज निभाना था,—सो जहाँ तक बन सका वह भी निभादिया।"

गाँव भर की स्त्रियाँ घर आईं और सभी ने दिलजमई की ही बातें कीं, परन्तु रमधनिया के दिल पर एक गहरी चोट लगी थी,—

एक गहरा आघात था,—एक गहरा सदमा। किसी ने क्या कहा यह वह न सुन सकी,—केवल रोती ही रही आज दिन भर।

रमधनिया रोई, जी भर कर रोई, अपने उस पति के लिए रोई जिसके साथ उसने सात फेरे लेने का गुनाह किया था, मार खाई थी, झिड़कियाँ सुनी थीं,—झुनिया अवश्य पैदा हुई, परन्तु शायद प्यार वह एक क्षण के लिए भी कभी प्राप्त न कर सकी,—ममता नहीं,—सहानुभूति नहीं।

रमधनिया को चन्दू का जो रूप मिला उसमें अपनापन लेश मात्र को भी नहीं था। कभी हँस-खेल कर बातें नहीं हुईं, कभी दो घड़ी बैठ कर चन्दू ने रमधनिया के जीवन में नहीं झाँका, उसके मन को नहीं परखा, उसके हृदय में पैदा होने वाली धड़कनों को नहीं सुना, उसके यौवन की उभर कर बुझ जाने वाली दीप-शिखा पर दृष्टि नहीं डाली।

चन्दू की माँ ने खाना नहीं खाया। रमधनिया और मुनिया ने लाख मिन्नतें कीं परन्तु उसके हलक से नीचे टुकड़ा उतर ही न सका। आखिर रमधनिया ने गम्भीर होकर कहा,—"तुम खाना न खाओगी तो मैं भी नहीं खाऊंगी।" और इतना कह कर वह वहाँ से उठगई।

परन्तु चन्दू की माँ में न जाने कहाँ से धैर्य आया कि वह स्वयँ उठ कर रमधनिया के पास गई। रमधनिया कोठे में बैठी जार-जार रो रही थी। सास बोली,—"उठ बहू! खाना ला मुझे।"

और रमधनिया उठ खड़ी हुई आँखों को पोंछ कर। रमधनिया ने थाली परस दी। सास को खाना खिला कर स्वयं भी खाया।

झुनिया की आयु इस समय पाँच वर्ष की थी। एक नाटक-सा देख रही थी वह,—केवल देखने भर से ही उसका सम्बन्ध था। उसने गली मुहल्ले के बच्चों में सुना कि उसके बाप की पुलिस ने कैद करा दी,—तो उसने अपनी माँ से जाकर पूछा,—"माँ! बालक कहते हैं कि बापू को पुलिस ने जेल भेज दिया,—उन्होंने डाका डाला था। यह सच है क्या माँ?"

रमधनिया रो रही थी। उसने अपने नेत्र पूंछकर झुनिया को गोद में उठालिया और फिर धीरे से बोली,—"हाँ बिटिया! वह ठीक ही कहते हैं।" और यह कह कर रमधनिया फिर फूट-फूट कर रोने लगी। झुनिया कुछ भी न समझ सकी।

झुनिया,—"लेकिन माँ, डाका क्यों डाला था बापू ने?"

रमधनिया के पास इस प्रश्न के समाधान का कोई उत्तर नहीं था, कोई शब्द नहीं थे। वह मौन थी पत्थर की शिला के समान और देख रही थी उस अबोध बालिका के स्वाभाविक सरल मुख पर।

झुनिया ने फिर प्रश्न नहीं किया परन्तु उसका प्रश्न उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता रहा। समझ ही न सकी वह। बच्चे कहते थे डाका बहुत बुरी बात है। बुरे लोग ही डाका डालते हैं। उसने फिर माँ से प्रश्न किया,—"माँ, क्या बापू बुरा आदमी है?"

रमधनिया ने झुनिया को अङ्क में भरकर ऊपर उठा लिया और फिर प्यार भरे स्वर में कहा—"बेटी! बुरा भला को तो भगवान् जाने लेकिन हाँ..."वह कह न सकी आगे। मौन हो गई। उसके नेत्र पसीज गये और आँसू ढुलक पड़े। उसका गला रुँध गया।

झुनिया,—"माँ तू कहती-कहती चुप क्यों हो गई?" अनजान बालिका ने माँ की ठोड़ी में अपना कोमल हाथ डालते हुए कहा। "एक दिन बापू ने तुझे भी मारा था माँ! सचमुच ही वह बुरा है।"

झुनिया भूली नहीं थी इस दो वर्ष पुरानी घटना को जब चन्दू ने रमधनिया को घसीट-घसीट कर एक ओर आँगन में पटक दिया था और फिर जूतियाँ-ही-जूतियाँ बजाडाली थीं उसकी की चाँद पर। झुनिया ने दुवारी के कोने में खड़े रहकर सिसकते-सिसकते वह काण्ड देखा था और जो गालियों की बौछार रमधनिया पर हुई थी वह भी उसने सुनी, वह सब अङ्कित था बालिका के कोमल हृदय पर।

बाबा के साथ एक दिन घेर में जो कहा-सुनी हुई थी, उस समय झुनिया भी वहाँ मौजूद थी। वह सब भी उसके छोटे से अनजान हृदय

को रुचिकर नहीं लगा था,—भयभीत दशा में ही सब कुछ उसके कानों में पड़ा, उसकी आँखों ने देखा और उसके नाजुक मस्तिष्क ने परखा।

झुनिया फिर कुछ नहीं बोली,—या मानो उसने अपनी माँ की दशा को देखकर कुछ कहना ही न चाहा। वह गोद से उतर कर सीधी बाबा के पास घेर में चली गई।

दातादीन खटिया पर चुपचाप अपनी गाढ़े की चादर ओढ़े लेट रहा था। उसके नेत्र पसीजे हुए थे और तमाम शरीर निस्तेज-सा हो गया था। उसका जवान लड़का, जिसके ऊपर उसने अपने और अपने खान्दान के स्वप्नों को सँजोया था, बालू का महल बनगया। आज वह बालू का महल रड़-रड़ करके धराशायी हो गया,—दस वर्ष के लिए जेल की तङ्ग कोठरी में चक्की पीसने के लिए बन्द कर दिया गया दातादीन का चन्दू। दातादीन के जीवन का रास्ता ही बदल गया, सोचने की दिशा ही समाप्त होगई। दातादीन ने अपने पिता के काम को आगे बढ़ाया था, उसे तरक्की दी थी और वह अपना घर बना सका, बैठक बना सका, बिरादरी में खान्दान का नाम ऊँचा कर सका। लेकिन चन्दू ने दातादीन के काम को आगे नहीं बढ़ाया। अब दातादीन के सामने एक अन्धकारमय भविष्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

बेटे के डकैती में जेल चले जाने से दातादीन का सामाजिक मान बहुत नीचे गिर गया। उसके साथ सहानुभूति रखने वालों ने भी उसे अच्छी नजरों से देखना बन्द कर दिया। उसके बुढापे ने दातादीन को जीवन में पस्त देखकर अपना चिन्ताओं का जाल उसपर फैलाया और वही दातादीन जो भीम के समान गाँव में सीना तानकर निकलता था अब झुकी गर्दन लिए लाठी के सहारे खाँसता हुआ चलता लोगों ने देखा। अपनी बैठक पर बैठते उसे शर्म आने लगी और वहाँ हर समय हुक्का पीने वालों के लिए तम्बाकू और उपले की आग का प्रबन्ध रखना भी अब उसके बस की बात नहीं रही थी।

साहूकार के बेटे ने दातादीन की टूटती दशा देखकर अपनी रकम

खतरे में समझी। फिर चन्दू ने उसके घर में डकैती डाली थी, यह भी उसके दिल पर एक ताजा घाव था।

जब दोनों आमने-सामने होते तो साहूकार का बेटा ऊपर से हँसता हुआ दिल में जलन लिये कहता,—"चौधरी सहाब! किसी की रकम लेकर इस तरह डकार जाना कुछ अच्छी बात नहीं। पिता जी आपको गाँव का सबसे ईमानदार आदमी समझते थे।"

इस पर दातादीन दबी जबान से कहता,—"ठीक कहते हो बेटा! साहूकार मुझे ईमानदार समझता था, यह उनकी मेहरबानी थी,—लेकिन तुम्हारी नजरों में तो मैं, चन्दू का बाप, गाँव की सबसे नादिहन्द आसामी हूं। इसलिए तुमने दावा भी कर दिया है अदालत में।" और इतना कह कर दातादीन ने खिसियाई सी दृष्टि से साहूकार के बेटे के मुँह पर देखा।

साहूकार का बेटा,—"लेकिन ताऊ! मियाद जो जारही थी कागज की! करता भी आखिर क्या?"मुस्कराते हुए बोला।

दातादीन,—"अच्छा किया बेटा!" कह कर लम्बी साँस लेतेहुए चुप हो गया। उसकी गर्दन झुक गई, और वह सीधा अपने घेर की ओर चला गया।

आज उसे लगा कि मानो यह घेर अब उसका नहीं था, इसमें बँधे बैल उसके नहीं थे और फिर संध्या को जब वह जंगल की तरफ गया तो उसे लगा कि वह लहलहाते हुए दो खेत जिनमें जीवनभर दातादीन अपनी कड़ी मेहनत का पसीना बहाता रहा था, जिनकी मिट्टी के अणु-अणु के साथ उसने अपने हाथ से खाद को रगड़ कर उसे जरखेज बनाया था, अब उसके नहीं थे। दातादीन खेत के किनारे खड़ा होकर रो पड़ा। संध्या की स्वर्णिम किरणें सरसों के पीले फूलों से खिले खेतों पर बिखर कर रात्रि के अंधकार में विलीन होती चली गईं,—काला पड़गया सारा संसार,—अन्धकारपूर्ण, निराशापूर्ण। दातादीन की दुनियाँ बदल गई। साहूकार के पैसे ने दातादीन के मौजूदा जीवन

को खत्म करदिया। दातादीन का सामाजिक स्तर बदल दिया। वह चाहे दो खेत का ही मालिक था, लेकिन जमींदार था, एक खान्दानी इज्जतदार आदमी था। अपनी जमीन पर खेती करता था। किसी का काश्तकार नहीं था,—अब उसे काश्तकार बनना होगा,—एक मजदूर बनना होगा। मजदूर....आज उसकी आँखों के सामने कल्लू चमार आकर खड़ा हो गया,—दातादीन का मजदूर। क्या दातादीन को भी कल्लू की तरह ही किसी की नौकरी करनी होगी ?

दातादीन के खेत वाकई उसके हाथों से निकल गये; उसके बैल बिक गये। उसके हल पड़ौंथे साहूकार ने नीलाम करा दिये। घर और उसकी बैठक भी उसे छोड़नी पड़ी। चन्दू की माँ चीखें मार-मार कर साहूकार और उसके खान्दान को कोस रही थी, परन्तु रमधनिया मौन पत्थर की पुतलिका के समान खड़ी थी। झुनिया उसके लहँगे से लिपटी यह सब दृश्य देख रही थी। रमधनिया ने एक भी अपशब्द किसी के लिए उच्चारण नहीं किया।

साहूकार के बेटे ने रमधनिया की चक्की, रमधनिया का चरखा, कठौती, तवा, पतीली, चीमटा, थाली और दो चार टोकरियों का घर-गृहस्थी का सामान निकाल कर घर से बाहर पटकवा दिया। एक गोल आटे की और चार मटके तथा मटकियाँ भी बाहर गली में निकाल कर डाल दीं। दातादीन का खुरपा और कसला, जो दुवारी के कोने में रखे हुए थे, वह दातादीन ने आखरी दम स्वयँ निकाल कर उसी गली में पड़े सामान के पास रख लिए। यह दोनों ही दातादीन के मजबूत हाथों के वह सहारे थे जिनके दम पर दातादीन ने एक दिन सफलता का मुख देखा था, उज्जवल भविष्य की रूपरेखा बनाई थी और अपने पूर्वजों से आगे बढ़कर समाज में एक नया और ऊँचा स्थान बनाने का प्रयास किया था। अपने उन औजारों को वह खुद उठाकर बाहर ले गया।

यह दखल अदालत के अमीन ने दिलाया था। अमीन साहब के बैठने के लिए साहूकार के बेटे ने पहले से ही एक मूढ़ा मँगा कर दाता-

दीन की दुबारी के बाहर डलवा दिया था। पान-सिगरेट की खातिर लगातार चल रही थी। साहूकार के बेटे ने, जब सब सामान घर से निकल गया और फर्द पर अमीन ने दातादीन का अँगूठे का निशान भी ले लिया, तो एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "चौधरी ! देखा कुछ, किसी का रुपया यों ही हजम कर लेना मामूली बात नहीं होती।" और फिर अमीन की तरफ मुखातिब होकर कृतज्ञता के स्वर में बोला,— "अमीन साहब ! मैं आपका कितना अहसानमन्द हूँ यह कह नहीं सकता। मैं तो अपनी समझ से इस रकम को डूबी ही समझ बैठा था। दावा किया अवश्य था परन्तु योंही आसमान में ढेला मार दिया था।"

"लेकिन अब तो फल झड़ पड़ा। पौ-बारह नहीं कहोगे इसे।" अमीन साहब ने मुस्कराते हुए पान की गिलौरी मुँह में दबा, सिगरेट का कश खींच कर कहा।

"सब आपकी मेहरबानी है यह।" साहूकार का बेटा बोला।

दातादीन ने यह सब अपने कानों से सुना। सौ-सौ रुपये के दो नीले नोट भी अमीन साहब की जेब में सरकते दातादीन ने देखे, परन्तु वह कर ही क्या सकता था। आज का यह दृश्य गाँव भर ने देखा। अनेकों प्रकार की बातें कहीं। कुछ ने कहा,—'बुरे काम का फल बुरा ही होता है भाई !' दूसरों ने कहा, 'साहूकार के बेटे से टक्कर लेने चला था। रगड़ कर रख दिया, एक ही बार में। बड़ों से झगड़ना बुरी बात है भाई !' कुछ ने कहा, भाई कुछ भी सही, किया बुरा ही साहूकार के बेटे ने। हो सकता है चन्दू ने डकैती में भाग लिया हो लेकिन वह भी तो दातादीन ही था जो लाठियों की छाया में साहूकारनी को शहर से छुड़ाकर लाया था।' दूसरों ने कहा, कुछ भी सही लेकिन अचानक में इस तरह किसी की गृहस्थी को घर से बाहर निकाल कर खड़ा कर देना बाल बच्चेदार आदमी को शोभा नहीं देता। इतनी थोड़ी-सी रकम के पीछे किसी को बेघरबार का कर देना इन्सानियत की बात नहीं। कहीं भगा तो नहीं जा रहा था बेचारा दातादीन।'

मतलब यह कि सभी पक्षों के लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये, परन्तु सहानुभूति और वास्तविक सहायता के लिए केवल मुनिया और मुनिया का बाप ही सामने आये। मुनिया के बाप ने अपनी दुबारी दातादीन के परिवार के लिए खाली करदी। दातादीन अपना सामान लेकर उसमें चला गया; आज वह रो भी न सका। उसके नेत्रों के आँसू आँखों के अन्दर-ही-अन्दर जम गये। अब उसकी इस चार प्राणियों की गृहस्थी का क्या होगा, यह कुछ उसकी समझ में न आया। उसका दिमाग चकरा रहा था, उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था और आँखों के सामने अन्धकार था, घोर अन्धकार।

रमधनिया रात भर न सो सकी। एक गम्भीर चिन्ता थी उसे। यों सोचना तो उसने अपने और अपने भविष्य पर उसी दिन से आरम्भ कर दिया था जिस दिन चन्दू दस वर्ष को जेल चला गया था। परन्तु, आज दातादीन का सब कुछ साहूकार के बेटे की सम्पत्ति बन जाने पर तो उसने देखा कि उसे केवल उसकी मेहनत और मजदूरी का ही सहारा था।

रमधनिया ने कलेजा भारी नहीं किया। साँझ को ही दुबारी में अपना मिट्टी का चूल्हा रखकर उसने नमक की मोटी-मोटी मिस्सी रोटियाँ बनाईं और अपनी सास तथा दातादीन को प्याज के साथ खाना खिलाया। रमधनिया का कहना दोनों में से कोई भी न टाल सका, भुनिया संध्या को ही मुनिया के पास खाना खाकर सोगई थी।

रात्रि में रमधनिया ने घूँघट की ओट करके दातादीन से पूछा,—"क्या हमारा इस गाँव में कोई और भी जमीन का टुकड़ा है जहाँ हम अपना घर बना सकें?"

दातादीन ने उत्तर दिया,—"है तो जरूर बहू! लेकिन घर बनाना आसान नहीं।" और इतना कह कर वह चुप हो गया।

रमधनिया सुबह होते ही वह जगह देखने गई। रमधनिया आज पहली बार गाँव में निकली थी। दातादीन गरीब अवश्य था परन्तु उसके घर

की बहू बेटियाँ इस तरह गाँव में नहीं निकलती थीं। पर आज तो दातादीन का कोई घर नहीं था, फिर घर की मर्यादा ही कहाँ बची। रमधनिया उसके साथ गाँव की गली में चल रही थी और दातादीन पत्थर का कलेजा किये आगे बढ़ रहा था।

दातादीन ने रमधनिया को उस जमीन के टुकड़े पर लेजाकर खड़ा कर दिया जो उसकी आखिरी सम्पत्ति थी इस गाँव में। बरसाती पानी के इकट्ठा होने का एक गन्दा जोहड़[1] था गाँव से बाहर, जिसके किनारे अँधेरे-उजाले गाँव की स्त्रियाँ आकर टट्टी फिर जाती थीं। जोहड़ के किनारे सुबह-शाम हर समय सूअर-सूरी और उनके बच्चे कीचड़ में लेट लगाते थे और अपनी थूथडी झड़क-झड़क कर मिट्टी इधर-उधर छितरा देते थे। रात को मेंढकों की टर्र-टर्र और मच्छरों की भिन्न-भिन्न भी वहाँ कम नहीं होती थी। एक लम्बी पूंछ वाला मच्छर, जिसे गाँव के लोग डाँस कहकर पुकारते थे, वहाँ बहुत होता था।

रमधनिया कुछ देर उस जमीन के टुकड़े पर खड़ी रही और फिर साहस के साथ बोली,—"बहुत अच्छा रहेगा यहाँ हमारा घर; गाँव से बाहर, एक तरफ!"

"लेकिन बनेगा कैसे वह!" दातादीन ने आकाश की ओर नेत्र फैला कर कहा।

जमीन के इस टुकड़े को दूसरे दिन दातादीन ने खुद अपने कसले से इकसार किया और रमधनिया ने खुरपे और झाड़ू से साफ कर दिया। फिर चिकनी जोहड़ की मिट्टी में थोड़ा भूसा और गोबर मिलाकर

---

१. 'जोहड़'—गाँव के बरसाती पानी को भरने के लिए कोई बनाया गया तालाब तो होता नहीं है परन्तु वह बन जाता है तालाब की ही किस्म से। शायद जब गाँव बसाये गये होंगे तो कच्चे मकान बनाने के लिए जिस भूमि को खोद कर मिट्टी ली गई होगी उसी नीचे पड़ गये स्थान ने जोहड़ों की शक्ल अख्तियार करली होगी।

उसे लीपा और उसी पर एक फूंस की झोंपड़ी डाल दी।

दो दिन दातादीन का परिवार मुनिया की दुबारी में ही रहा। तीसरे दिन जोहड़ के किनारे वाली झोंपड़ी में चला गया। मुनिया और मुनिया के बाप रामू दोनों के प्रति उनके मन में महान् श्रद्धा की भावना थी।

आज रात को झोंड़ी में बिछी पुआल पर रमधनिया जब भुनिया को साथ लेकर लेटी तो उसे लगा कि मानो उसका सब कुछ उसके पास ही था। उसके कलेजे की टुकड़ी उसके पास सो रही थी। लेकिन चन्दू की माँ का कलेजा शान्त नहीं था। दातादीन कुलमुला रहा था। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। झोंपड़ी के बाहर चटाई पर टाट बिछाये दातादीन लेटा था। उसकी दृष्टि आकाश में झिलमिलाते हुए तारों में एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे पर तैरती हुई न जाने कहाँ और कब विलीन होगई। आज कुछ सोचने का विचार करते हुए भी वह कुछ न सोच सका। भगवान् की गोद में फेंक दिया दातादीन ने अन्त में अपने को, एक निस्सहाय, निर्धन और निर्बल व्यक्ति के रूप में।

चन्दू की माँ इस समय भी बुड़बुड़ा रही थी। साहूकार के वंश के सर्वनाश का मंत्र ही इस समय इस असहाय प्राणी की जबान पर था। उसकी हर कराह में चन्दू का प्यार और साहूकार के बेटे के लिए श्राप उभर-उभर कर आता था। वह रो रही थी, उसका हृदय रो रहा था। चन्दू ने अपनी माँ की कोख को लजाया,—यह लज्जा उसके लिए कम नहीं थी। उसे बहुत क्रोध था चन्दू पर परन्तु चन्दू के जेल चले जाने ने उसका दिल तोड़ दिया था। यह टूटे दिल की आहें थीं जो इस समय उसकी जबान से अनायास ही निकल जाती थीं।

रमधनिया ने अपनी सास का ध्यान बदलने के लिए भुनिया को लाकर उसके पास सुलाते हुए कहा,—"माजी! किसी को गाली देकर भला क्या हाथ आने वाला है? यदि भगवान् को मंजूर न होता तो क्या यह होने वाली बात थी?"

सास की आँखें आँसुओं से भरी थीं। उसने प्यार से झुनिया को छाती से चिमटा लिया और रमधनिया के मुँह पर देखकर नेत्र बन्द कर लिए।

रमधनिया ने देखा कि उसकी सास के बन्द नेत्रों के कोनों से आँसू निकल कर नीचे ढुलक पड़े थे, उसके सूखे गालों पर।

: ७ :

"माँ ! हमारा घर उस आदमी ने साहूकार को क्यों दिला दिया ?" झुनिया ने एक दिन एकान्त में अपनी माँ से पूछा। उस दिन क्या कुछ हुआ था, वह समझ न पाई अबोध बालिका; परन्तु जो हुआ उसका पूरा चित्र उसके हृदय-पटल पर अङ्कित था,—उसके जीवन के इतिहास का एक कभी न फटने वाला पन्ना बन चुका था वह।

"हमें साहूकार का रुपया देना था बेटी ! हम वह रुपया दे न सके। इसीलिए उस अदालत के आदमी ने आकर रुपये के बदले हमारा घर-बार साहूकार के बेटे को दिला दिया।" रमधनिया ने झुनिया को गोद में बिठलाकर समझाते हुए कहा।

"पर साहूकार के बेटे के पास तो अपना बहुत अच्छा घर है माँ। हमारे छोटे से घर का वह क्या करेगा ?" झुनिया ने आश्चर्य से पूछा। अदालत क्या चीज है। उसने क्यों झुनिया का मकान उस आदमी को दिला दिया जिसके पास अपना एक अच्छा बडा मकान था,—यह वह न समझ सकी। एक प्रश्न ने झुनिया के बाल-जीवन में प्रवेश किया। कुछ समझ तो वह न सकी, परन्तु कुछ सोचती अवश्य रही।

"बेच देगा बेटी ! बेचकर अपना रुपया वसूल करेगा।" रमधनिया ने सरलता पूर्वक कहदिया।

"ठीक है।" बच्ची ने कहा और वह कुछ न बोली, परन्तु उसका कच्चा कोमल-सा दिल न जाने कैसा होगया। वह एक स्वप्न-से में

डूबगई। इसी समय मुनिया वहाँ आई और उसने प्यार से झुनिया को गोद में उठाकर चूम लिया।

रमधनिया ने इस झोंपड़ी में ही अपनी गृहस्थी का पूरा साजो-समान लगा लिया। चक्की, चूल्हा, चौका, चर्खा सब इसी में चलने लगे, उसी तरह जैसे पिछले मकान में चलते थे। रमधनिया अब न केवल घर का ही काम करती थी वरन् बाहर का काम करने में भी उसे कोई हिचक नहीं थी। झुनिया को अपनी सास के पास छोड़ कर अपने बूढ़े ससुर के साथ जङ्गल जाना भी उसने शुरू कर दिया था।

वह जङ्गल जाती और घास की पूरी गठिया सिर पर उठा लाती थी। दातादीन से अधिक घास खोदती थी और एक ही साँस में नीह[1] पर रख कर गँडासे से पूरा गट्ठा-का-गट्ठा काट डालती थी। सब जानवर बिक गये थे दातादीन के, केवल रह गई थी एक गाय, जो उसे बहुत प्यारी थी। गाय का दूध दूधिये को बेचकर ही आजकल इस गृहस्थी का काम चलता था।

कभी-कभी रमधनिया के पीछे जब मुनिया उनकी झोंपड़ी पर पहुँच जाती थी तो बैठ कर ताई से बातें शुरू हो जातीं। ताई का वह लाल-पीला मिजाज अब कुछ ठण्डा हो गया था, कभी-कभी ऐंठ उसमें वही पुरानी भड़क उठती थी परन्तु रमधनिया,—उसने तो जीवन में दूसरों की ऐंठ पीजाने के लिए ही मानो जन्म लिया था। सास उसकी इस दशा में भी यदि कभी फटकार बतलाती तो वह अपना काम बन्द नहीं करती,—उत्तर देने की कभी सोची ही नहीं उसने।

---

१. नीह उस स्थान को कहते हैं जहाँ घास को मुट्ठी में दाब कर काटने वाला रख कर ऊपर से गँडासे से काटता है। इस स्थान पर एक लकड़ी का मोटा टुकड़ा गाड़ दिया जाता है जिससे कि घास काटने के बाद गँडासा जमीन में न लग कर उसी में गड़े और उसकी धार खराब न हो।

"ताई ! चन्दू ने ताऊ की बुढ़ापे में कमर तोड़ दी।" मुनिया ने ताई के पास बैठते हुए सहानुभूति के साथ कहा

चन्दू की बुराई बहुत सुन चुकी थी चन्दू की माँ, और अब उसे सुनकर कुछ झुँझलाहट सी आने लगी थी। वह चन्दू की बुराई को रमधनिया की कमजोरी मानती थी। और सच भी यही था उसकी नजर में। इसी स्वाभिमान के बल पर तो वह बुढ़िया जी रही थी। उसके घर की बर्बादी का कारण उसकी नजर में चन्दू नहीं, रमधनिया थी। अपने चन्दू को वह दोषी ठहराने में असमर्थ थी। उसके प्यार की कमजोरी वहाँ थी। उसने भड़क कर कहा,—"देख मुनिया बेटी ! मैं चन्दू के लिए कुछ नहीं सुनना चाहती। अपनी बहू के लिए भी कुछ नहीं।"

मुनिया चुप हो गई। ताई का ऐसा नपा-तुला जवाब उसने कभी नहीं सुना था। ताई अब जो कुछ भी किसी के विषय में समझती थी, ठीक समझती थी। और वह जो कुछ भी समझती थी उसमें अब कोई परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं थी। वह चन्दू के विषय में ही नहीं, किसी के विषय में भी बात नहीं करना चाहती थी।

ताई अब इधर-उधर नहीं जाती थी। अपनी ही झोंपड़ी में रहकर चर्खे से नेह लगा लिया था। चरखा मानो अब उसकी माला थी और उसके प्रत्येक चक्कर पर उसकी माला का एक मनका आगे बढ़ जाता था। यही चन्दू की माँ का भजन-पूजन था। मन्दिर में जाकर घण्टा घड़ियाल बजाने का उसके पास समय नहीं था। पूरी चार आदमियों की गृहस्थी का पालन करना था, पेट भरना था। वह सचमुच एक बूढ़ी मजदूरिन बनगई थी जिसने अपनी हड्डियों को अपने कर्तव्य की भट्टी में झोंक दिया था। चन्दू की माँ एक योगिनी थी, तपस्या कर रही थी।

दातादीन की उन्नति और तरक्की का फितूर उसके दिमाग से निकल गया था। दातादीन स्वयँ उसे अपने सामने कभी-कभी बुढ़ापे से

दबा दीखता था, परन्तु हड्डियाँ उसकी भी पीछे हटने के लिए उद्यत नहीं थीं। सुबह-ही-सुबह खुरपा लेकर जाता था तो रमधनिया के जाने तक दो गट्ठे घास खोद कर तैयार कर लेता था। उसकी भुजाओं और सीने में वह उभार नहीं था, लेकिन हिम्मत अभी ज्यों-की-त्यों बरकरार थी उसमें।

दातादीन दब कर चलता था गाँव में, लेकिन उसका दिल बहुत मजबूत था। कभी-कभी जब वह सोचता था तो बड़ी पते की बात सोचता था। और आज तो वह हँस ही पड़ा जिन्दगी पर। झुनिया सामने से आगई और वह जोर से खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने प्यार में भर कर झुनिया को गोद में उठा लिया और फिर उसे अपनी दोनों भुजाओं से ऊपर उठाकर बोला,—"बेटी ! तेरी शादी करूंगा।" शादी की समस्या उसके मस्तिष्क से टकराई। प्यार के साथ-ही-साथ परेशानी ने दातादीन का गला दबोचना चाहा, परन्तु दातादीन उससे ऊपर उभर कर बोला, "अपने आखरी दम तक करता ही रहूँगा, जो कुछ कर सकूंगा बेटी ! बस यही कह सकता हूं।"

झुनिया ने दातादीन के कहने में से एक शब्द भी सुनने और समझने का प्रयत्न नहीं किया, केवल बाँहों पर झूलने का आनन्द और बाबा का प्यार अपने हृदय में भर लेने में ही वह संलग्न थी। झुनिया दातादीन के गले में लिपट गई। उसने मुँह के पास मुँह लेजाकर पूछा,—"माँ नहीं आई बाबा !"

"अभी आ रही है बेटी ! बहू अभी-अभी आती है। गौया को पानी पिलाने गई है।"

चन्दू की माँ भी पास को खिसक आई, और धीरे से कहा, "झुनिया आई थी।"

"फिर क्या हुआ ?" दातादीन ने पूछा।

"बहू की बड़ी तारीफ करती थी।" चन्दू की माँ ने कहा।

"तुम्हें बहू मिली ही तारीफ के काबिल है चन्दू की माँ !" एक

गहरा साँस लेकर दातादीन ने कहा। "बाप शराबी हो गया और उसने औलाद पर रुपया ले लिया तो इसमें औलाद का क्या दोष ?"

"मैं बुरी कब कहती हूँ....." बस इतना कहकर वह चुप होगई। दातादीन समझ गया कि उसने अपने हृदय की बात हृदय में ही दबा ली, परन्तु अब दातादीन बहू के विषय में कुछ सुन ही नहीं सकता था।

दातादीन आदमी के गुणों की परख करना जानता था। सबसे पहले उसने अपनी स्त्री के गुणों की परख की थी। उसे परखा और उसपर घर का भार सौंप दिया। खुद लग गया हल बैल लेकर कड़ी खेती की मेहनत पर। जो कमाया वह चन्दू की माँ को दिया और चन्दू की माँ ने दातादीन को घर बनाने और बैठक बनाने के लिए रुपया दिया। घर और बैठक बनाकर दातादीन ने खान्दान का नाम रौशन किया। बिरादरी में नाँक ऊँची की।

आज उसने चन्दू की बहू को परखा था। चन्दू की बहू आज दातादीन के बेटे की बहू नहीं थी, एक मजदूर का साथी था वह, उस मजदूर का कि जिसके सिर पर नीला आकाश और नीचे जमीन,—बस और कुछ नहीं था।

लेकिन आज दातादीन और दातादीन के खान्दान पर किसी साहूकार का कर्ज नहीं था। कोई पैसा उसे देना नहीं था किसी का। वह, उसके बेटे की बहू, उसकी बहू सब मजदूरी करते थे,—और झुनिया अधिकतर अपनी दादी और मुनिया के ही पास रहती थी, काम सीखती थी, घर-बाहर का।

साहूकार का बेटा कुछ दिन तो इस ताक-झाँक में रहा कि कब वह दातादीन के परिवार को भूखा मरते देखे। परन्तु वह दिन उसे देखने को न मिला। चन्दू की माँ ने इस ध्यान के साथ चरखा चलाया और दातादीन ने इस संलग्नता के साथ घास खोदी कि रमधनिया ने घर के चर्खे का ढर्रा बाँध दिया। रमधनिया पीसने-खोटने और खाने खिलाने के अलावा गाय का पूरा काम कुट्टी से लेकर न्यार डालने

तक खुद करती थी। जङ्गल से घास का गट्ठा उठाकर लाना भी उसके लिए नियम बन गया था।

इतना काम करने पर भी रमधनिया के मन में मस्ती नहीं थी, उमङ्ग नहीं थी,—कभी-कभी झुनिया को आँखों के सामने खेलती कूदती देखती थी तो आँखों में आँसू भर आते थे। झुनिया को देखकर उसे चन्दू की याद आजाती थी। कभी-कभी अकेली बैठकर वह सोचती,—कैसा विचित्र है यह जीवन। उसके अपने जीवन को ही देखो,—फूल खिलने से पहले ही मुरझाने लगा। आफत और मुसीबत के झुलसादेने वाले सूरज की रचना क्या भगवान् ने इसी फूल के लिए की थी? रमधनिया का मस्तिष्क निर्णय न कर सका। वह रोती रही बहुत देर तक एकान्त में बैठी।

"रो रही है बहू!" मुनिया ने अकेले में पूछा।

"हाँ, रोना ही आ गया आज ननदजी! जिन्दगी पहाड़ बनगई। लेकिन सोचती हूँ कि शायद झुनिया के ही सहारे मैं कभी किसी के लाल का मुँह देख सकूं। यदि झुनिया लड़का होती तो....." कहती-कहती चुप होगई रमधनिया। उसकी नजरों के सामने उसका पति, चन्दू, आकर खड़ा हो गया। वह काँप गई।

कितना हृष्टपुष्ट, कितना सुन्दर, हर समय मुस्कराता हुआ चेहरा,—परन्तु कहाँ? वह तो आदमी-सा ही नहीं लगता। भय लगता है उससे। पसीना आगया रमधनिया को। वह रोती हुई ही बोली,—"नाँ ननदजी! नाँ! मुझे मेरी झुनिया ही सब कुछ है। कितनी भोली है मेरी झुनिया?"

"झुनिया सचमुच ही बड़ी भोली है बहू! मेरा तो सारा दिन इसी के सहारे कटता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि जब यह ससुराल चली जायगी तो मैं कैसे रहूँगी।" और सचमुच मुनिया का मन भारी-सा होआया। मुनिया भी झुनिया को अपनी ही बच्ची की तरह बहुत प्यार करती थी।

रमधनिया के हृदय में धँस गये मुनिया के यह शब्द। उनमें कितना अपनापन था। वह मुनिया ने उसकी झुनिया के ही तो प्यार में कहे थे।

"झुनिया एक खिलौना दे दिया है भगवान् ने ननदजी! मुसीबत की जिन्दगी में भी हम तीनों प्राणी इस खिलौने से खेल कर थोड़ी देर के लिए अपनी परेशानी भुला लेते हैं।" रमधनिया ने कहा।

"लेकिन बहू! हम औरतों की भी बड़ी मुसीबत है। हमारे भाग्य में क्या बदा है इसे कौन जाने। भगवान् करे झुनिया को ऐसा वर मिले कि जो बुढ़ापे में तेरी भी देख-भाल कर सके, लेकिन....."'लेकिन' कह कर मुनिया मौन होगई। वह एक शब्द भी आगे न बोल सकी। मुनिया के सामने मुनिया के विवाह और उसके पश्चात् ससुराल वालों के व्यवहार का एक नक्शा खिंच गया। मुनिया के पिता ने क्या कुछ नहीं किया मुनिया की शादी में। अपनी औकात से बाहर जाकर सब कुछ किया। घर में जो कुछ था उसके अतिरिक्त कुछ इधर-उधर से पकड़ कर भी लगा दिया। परन्तु इतना सब कुछ करने पर भी मुनिया के ससुर और मुनिया के पति को वह देना-लेना पसन्द नहीं आया। मुनिया की सास तो उसे देखकर आग-बबूला ही होउठी। जो कपड़े-लत्ते मुनिया दान-दहेज में लेगई थी उनकी बुरी तरह छीछालेदर हुई। उन्हें खूब उठा-उठा कर मुँह बना-बना कर इधर-उधर झटका-पटका गया। गाँव की कुछ औरतों को कुछ पसन्द आया भी पर घरवालों की यह दशा देखकर उन्होंने भी नाँक भौं चढ़ाने में कसर न छोड़ी। फिर मुनिया की सास की बातों में तो सब को बात मिलानी ही थी। अपनी यह कहानी आज पहली बार मुनिया ने रमधनिया को सुनाई।

"बड़ी बहू का मुकाबला तो क्या यह तो मँझली के बराबर भी नहीं लगती, लाई ही क्या है,—हमारे लाल के साथ तो धोखा होगया।" मनिया की चचिया सास ने मुनिया को खूब सुना-सुनाकर यह शब्द उस समय कहे जब पहली बार गाँव की औरतें मुनिया का मुँह देखने आईं।

मुनिया यह शब्द सुनकर सहम गई,—"मैं सहम गई बहू! वह

सुनकर और वही हुआ अन्त में मेरे साथ। मुझे वह घर सर्वदा के लिए छोड़ देना पड़ा। अब कभी याद भी नहीं आती मरों की। लेकिन हाँ कभी-कभी इतना अवश्य सोचती हूँ कि क्या आदमी निकला वह भी। मैं धनाढ्य की लड़की न सही, अधिक पढ़ी-लिखी भी न सही, फिर भी परख कर तो देखता।" मुनिया की आँखों में आँसू भर आये।

रमधनिया ने मुनिया के हृदय में दबी हुई इस ज्वाला के आज पहली बार दर्शन किये। मुनिया कलेजा थाम कर रह गई, बैठ गई वह वहीं गाय की खोर पर।

रमधनिया को मुनिया का यह किस्सा अजीब-सा लगा। रमधनिया सुसराल में इस लिए दुतकारी गई कि उसके बाप ने उसपर रुपया लिया था और मुनिया.....उसका बाप सास की झोद बहुत बड़ी नकदी देकर न भर सका,—उसका यही दोष था। दोनों पिताओं की करनी को भर रही थी,—रमधनिया ने महसूस किया।

"जिन्दगी बरबाद करदी।" रमधनिया ने दुखी मन से कहा।

"और अपनी भी तो कर ली बहू! खुद भी बेकार होकर बैठ गये। बापू ने नाकों चने चबा दिये उन्हें। उनकी सब रियासत खाक में मिला दी। कर लेते न दूसरी शादी। रुपयों की न्यौली बाँधे-बाँधे फिरे तमाम बिरादरी में। किसी की क्या मजाल थी जो शादी कर देता अपनी बेटी की मेरे रहते हुए। मुझे घमण्ड है बहू! अपने बाप पर।"

और मुनिया का मस्तक तथा सीना गर्व से ऊँचा उठगया। मुनिया को अपने पिता पर गर्व था। रमधनिया पर गर्व करने के लिए वह बाप नहीं था,—परन्तु उसे भी गर्व था अपने ससुर दातादीन पर, अपनी सास पर, जो घास और चर्खे के काम से इस तरह लिपट गये थे कि क्या कोई भक्त अपने भगवान् से लिपट सकता था।

रमधनिया की गाय ब्याई और उसने बछड़े को जन्म दिया। रम-

धनिया ने पास पड़ोस में गुड़ डालकर पेवसी [1] बाँटी। वह गरीब अवश्य होगई थी परन्तु उसने अपने रीति-रिवाज नहीं बदले थे। लेन-देन उसका गाँव में उसी तरह चलता था। चन्दू की बात दिन-दिन पुरानी होती जारही थी।

रमधनिया के सामने भी अब जीवन में एकही काम करने को था और वह था झुनिया की शादी। झुनिया की शादी करने के लिए तीन प्राणी नित्य ही मजदूरी करते थे परन्तु खाने और फटा-पुराना कपड़ा पहनने के अतिरिक्त और एक दमड़ी भी न बचा पाते। दातादीन को तो इसी में आश्चर्य था कि रमधनिया आखिर गृहस्थी का खाना-कपड़ा भी कैसे चला रही थी।

दातादीन के परिवार का चुपचाप बैठकर खाना और दिन गुजारना साहूकार के बेटे की नजर में खटकता था। एक कीना-सी थी उसके मन में,—जलन थी बड़ी भारी।

जिसे साहूकार का बेटा मारना चाहे वह कोरी मजदूरी के दम पर जिन्दा रहे, यह वह सहन नहीं कर सकता था। दातादीन के अपने खेत नहीं थे। वह गाँव के खेतों में मेंढ़ों से ही घास खोदकर लाता था और उसी को बेचकर तथा गाय को खिलाकर और उसका दूध बेचकर उसके परिवार का काम चलता था।

संध्या को चिकन का कुर्ता पहने साहूकार का बेटा मरसेराइज्ड सुपर फाइन की धोती में चूनट डालता हुआ मुख में गिलौरी दबाये सिगरट का कश खींचता हुआ दातादीन की झोंपड़ी पर जाकर व्यंग्य-पूर्ण मुस्कान के साथ बोला,—"अब तो खूब ऐश की छन रही है चौधरी साहब!"

---

१. पेवसी गाय या भैंस के ब्याने पर जो पहले पाँच छै रोज का दूध होता है उसे गर्म करने से बनती है। यह कुछ-कुछ फटे दूध और रबड़ी के बीच की चीज बन जाती है,—काफ़ी स्वादिष्ट।

दातादीन उसका मतलब न समझा। उसने आश्चर्य से पूछा,—"मैं मतलब नहीं समझा तेरा बेटे !"

"मतलब क्यों समझोगे चौधरी ! जो काम बेटा करके जेल चला गया है वही अब तुमने भी करना शुरू कर दिया है।"

दातादीन सहम गया। उसे पसीना आगया। वह अपने को न रोक सका। चाहता तो था कि इस साहूकार के बेटे की टाँट गर्म कर दे परन्तु अपनी नाजुक हालत देखकर चुप होगया। पढ़ा-लिखा न सही, दातादीन की दानिशमन्दी में कोई कसर नहीं थी। दातादीन ने मुस्करा कर ही उत्तर दिया,—"बेटा ! मैं किसी से झगड़ा करना नहीं चाहता। तेरा रुपया था, सो तूने मेरा घर-बार सब ले लिया। अब तो मेरे पास कुछ रह नही गया है। यह झोंपड़ी जरूर है, सो इसे भी अगर छुड़ाना चाहे तो पहले कह कर छुड़ाना। धोखे का कभी कोई काम तेरे बाप ने नहीं किया मेरे साथ,—भगवान् सद्गति दे उसे।"

साहूकार का बेटा दातादीन का यह उत्तर सुनकर अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन गया परन्तु ऊपर से बोला,—"यह भला क्या कह रहे हो चौधरी साहब ! मुझ से तो कभी ख्वाब में भी आपका अहित नहीं हो सकता। और पिता जी की क्या बात कहते हो, वह तो देवता थे, देवता। हम उनकी भला क्या बराबरी कर सकते हैं ?"

दातादीन ज्यादा मुँह नहीं लगा उसके। चुपचाप गाय के खूँटे के पास चला गया। लेकिन साहूकार का बेटा आज बहुत देर तक झोंपड़ी के चारों ओर ही मँडराता रहा।

: ८ :

दातादीन बहुत सवेरे ही निकल जाता था घास खोदने। रमधनिया घर का काम-काज खतम करके जाती थी। चक्की पीसना, पानी भरना, बासी रोटी करना, गाय के न्यार की देख भाल करना, उसे पानी पिलाना, झुनिया के मुँह-हाथ धोकर कपड़े पहनाना और फिर कहीं उसे फुर्सत मिलती थी जंगल जाने की।

दातादीन ने घास खोदकर ढेर लगा लिया और अब वह इस इन्तज़ार में था कि रमधनिया आकर उसके गट्ठे बनवाकर उठवाये और उसके साथ गाँव को लिवाकर लेचले। दातादीन की बासी रोटी भी रमधनिया ही लेकर आती थी।

दातादीन घास के पास ही खेत के मेढ़े पर धूप तापने के लिए बैठ गया। बैठा-बैठा वह सोचने लगा, दातादीन ! तू भी कैसा भाग्य लेकर आया ? जीवन में जो भी पासा फेंका वह उलटा ही पड़ा। चन्दू की शादी की उसने, बस यही भूल की। शादी न करता तो यह सच था कि चन्दू कुवारा रह जाता, तो रह जाता बला से। उसे तो जेल जाना ही था। कम-से-कम साहूकार का बेटा तो इस तरह खान्दान की और उसकी मिट्टी खराब न करता।

परन्तु इसी समय उसे सामने से रमधनिया और झुनिया आते दिखाई दिये। अब झुनिया रमधनिया के साथ अक्सर जंगल चली जाती थी।

दातादीन की दृष्टि इन पर गई तो उसे लगा कि उसने भूल नहीं की। यदि शादी न करता तो रमधनिया उसे कहाँ से मिलती, झुनिया को वह कहाँ पाता,—वह घर, वह घेर, वह खेत, वह सब न्यौछावर थे रमधनिया और झुनिया पर,—दातादीन का हृदय गर्व से फूल उठा।

झुनिया ने नतने में बँधी दो मिस्सी रोटियाँ, जौ-चने की, दातादीन के हाथों में देतेहुए पानी का करुवा पास में घास पर रख दिया और सिर से ईंढ़ी उतार कर हाथ में लेली। झुनिया एक लोटे में छाछ लिए थी, उसने वह भी बाबा के सामने रखते हुए कहा,—"बाप-रे-बाप! बाबा! तुमने तो घास का ढेर लगा लिया। इतनी घास बाबा! तुम इतनी ठण्ड में भला कैसे खोद लेते हो?" इतना कहकर वह बाबा के ही पास घास पर बैठगई।

दातादीन ने रोटियाँ नतने से निकाल कर हाथ में ले लीं और छाछ की लुटिया से एक घूंट भरकर कहा, "अब हाथ थक गये बिटिया! नहीं तो घास का ढेर क्या? यही दातादीन था जो ईख का एक पूरा क्यार-का-क्यार काटकर दम लेता था।"

"क्यार-का-क्यार!" आश्चर्य-चकित होकर झुनिया ने दातादीन की बात सुनी और दातादीन की आँखों के सामने उसके खेत की लहलहाती हुई ईख का नक्शा बन गया। उसके नेत्र बन्द हो गये और हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रुक गया।

"रोटी खाओ बाबा!" झुनिया ने कहा।

झुनिया बहुत चतुर लड़की थी। दातादीन की दशा देखकर वह समझ गई कि बाबा को अपने खेत याद आगये। झुनिया अब बारह वर्ष की थी। वह तनिक गम्भीर होकर बोली,—"बाबा तुम्हें खेत याद आगये। माँ कहती थीं कि एक दिन हमारे भी खेत थे। उनमें ईख और सब-कुछ पैदा होता था। वह सब साहूकार के बेटे ने लेलिये। उसका कर्ज था हम पर।"

"हाँ बेटी !" एक गहरी आह भर कर दातादीन ने कहा; परन्तु वह बच्ची के मन पर इस भार को नहीं आने देना चाहता था। तुरन्त सँभल कर बोला,"लेकिन बेटी ! क्या हुआ ? अभी तो तुम्हारे बूढ़े बाबा की हड्डियों में बहुत जान बाकी है। मैं इतनी घास खोद सकता हूं कि यह गाँव क्या आस-पास के इलाके में कोई नहीं खोद सकता, तुम्हारी दादी इतना सूत कात सकती है कि जितना आस-पास में कोई नहीं कात सकता और तुम्हारी माँ !.....रमधनिया...मेरी बहू रानी..... वह न जाने क्या-क्या कर सकती है। वह वह कर सकती है जो कोई मर्द नही कर सकता।" भावना में बहकर दातादीन कहता गया।

रमधनिया पास में बहने वाले बम्बे के किनारे बैठी दातादीन का खाना खत्म होने की बाट देख रही थी। इसी समय उसे बम्बे की पटरी पर साहूकार का बेटा आता दिखाई दिया। उसके साथ पटवारी भी था गाँव का।

पटवारी और साहूकार का बेटा रमधनिया को बैठी देखकर वहीं ठिठक गये। रमधनिया उठ खड़ी हुई। साहूकार का बेटा तो बम्बे की पटरी पर ही खड़ा होगया लेकिन पटवारी सीधा एक मेंढ़े से नीचे उतर कर दातादीन के पास तक पहुँच गया।

रमधनिया का दिल धक-धक करने लगा। वह डरगई कि आज अवश्य कोई काण्ड होने वाला था। वह भी धीरे-धीरे उधर को ही बढ़ चली।

पटवारी दातादीन के पास पहुँचकर बोला,—"क्यों चौधरी दातादीन ! मैं पूछता हूँ कि क्या शराफ़त के यही मायने हैं ?"

"क्या है पटवारी जी ?" कुछ न समझते हुए आश्चर्य-चकित होकर दातादीन ने पूछा।

"क्या है पटवारी जी ? दूसरों के खेत काटते तुम्हें बुरा नहीं लगता।" व्यंग्यपूर्ण स्वर में पटवारी ने पूछा।

"लेकिन मैंने तो आज तक किसी का खेत नहीं काटा। आज तीन

साल से इसी जङ्गल में घास खोद रहा हूँ,—कभी किसी ने यह ताना नहीं दिया मुझे।" दातादीन ने नम्रता पूर्वक कहा।

"न दिया होगा, लेकिन मुझे यह बातें पसन्द नहीं। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे खेतों पर घास खोदने भी आओ।"

साहूकार का बेटा बम्बे की पाल पर खड़ा-खड़ा मुस्करा रहा था। वहीं से सहानुभूति दिखलाते हुए बोला,—"अरे, पटवारी जी! रहने भी दो न, चौधरी दातादीन को! बेचारे घास ही तो खोद रहे हैं। कोई चोरी डकैती के लिए तो आये नहीं हैं तुम्हारे खेत में।"

दातादीन की दृष्टि साहूकार के बेटे पर गई तो वह पत्थर की शिला के समान जड़ होगया। झुनिया चुपचाप यह सब कुछ देख रही थी। जो भगवान् दातादीन को यह खेल खिला रहा था, उसी भगवान् की धरती का मालिक पटवारी दातादीन को पेट भरने के लिए भी घास खोदने से वञ्चित कर रहा था।

दातादीन पटवारी की शकल देखकर मुस्करा दिया और साहूकार के बेटे की ओर देख कर बोला,—"बेटा! मुझे तेरी सहानुभूति की जरूरत नहीं, और न ही मुझे पटवारी की घास चाहिए। इसी पटवारी को अपने खेतों की लम्बी-लम्बी चरी की पूलियाँ न जाने कितनी बार मुफ्त भेजी होंगी दातादीन ने और तेरे बाप की गाय का चारा तो सदा दातादीन के ही खेतों से जाता था। तूने उसी चारे से पली हुई गाय का दूध पिया है। इसमें तेरा दोष नहीं; दोष उस चारे का है। उसी के दूध को पीकर चन्दू डकैत बन गया,—लेकिन वह फिर ईमानदार डकैत है। जज के सामने साफ कह दिया कि उसने डाके में हिस्सा लिया था। लेकिन बेटा! तू तो दिन दहाड़े डकैती डालता है और चिकन का कुर्त्ता पहनता है।"

साहूकार का बेटा सिर खुजलाकर रह गया। दातादीन की रौबीली तनी मूछें उसे भूली नहीं थी। किस तरह उसका बाप दातादीन को झुकर 'जैरामजी की' करता था, यह भी उसने अपनी आँखों से देखा

था। पटवारी भी सन्न-सा रहगया। वह आगे न बोल सका,—एक शब्द भी।

दातादीन फिर गम्भीरता पूर्वक पटवारी की ओर मुँह करके बोला, "यह घास पड़ी है। खोद मैंने जरूर दी है। लेजाना चाहो तो लेजा सकते हो। जिसने पेट दिया है, दो रोटी भी वह जरूर देगा।" और इतना कहकर दातादीन ने चादर का किनारा तमाम घास को जमीन पर गिराने के लिए पकड़ लिया।

पटवारी को दातादीन की पुरानी जिन्दगी याद आगई। उसे यह भी याद आया कि जब वह पहले दिन इस गाँव में आया था तो दातादीन ने ही उसके खाने के लिए अनाज भेजा था। जब पटवारी ने घर बनाया था गाँव में तो दातादीन ने अपने बैल और अपनी गाड़ी दी थी उसके मकान का सामान ढोने के लिए। शहर से कड़ियाँ, चौखटें, किवाड़, फड़के, खिड़कियाँ, रौशनदान और दरवाजे पर का पत्थर भी दातादीन ही लिवा कर लाया था अपनी गाड़ी में।

जब पटवारी ने गाय मोल ली थी तो उसका चारा भी दातादीन के यहाँ से ही गया था।

पटवारी ने देखा कि दातादीन में आज भी वही अकड़ थी। नाक पर मक्खी बिठलाकर दातादीन गाँव में आज भी नहीं रहता। गरीब था तो क्या हुआ? मेहनत करता था और गाँव में रहता था। कोई उसे देख कर चिढ़े क्यों? जले क्यों?

साहूकार का बेटा अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला कर रह गया। 'रस्सी जल गई लेकिन उसके बल नहीं गये।' उसने मन-ही-मन कहा। वह ऊपर से मुस्करा कर बोला,—"चौधरी साहब! आप मुझे बहुत गलत समझते हैं।"

"गलत या सही, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता बेटा! तू अपने मन में फिजूल दुखी होरहा है। किसी को कुछ कहने के काबिल तो मुझे मेरे चन्दू ने ही नहीं छोड़ा, लेकिन मैं तो तुझे और चन्दू को बराबर ही

मानता हूँ।" कहकर दातादीन चुप होगया। वह गठिया की घास को नीचे डालदेना चाहता था कि पटवारी ने आगे बढ़कर दातादीन का हाथ पकड़ लिया।

पटवारी ने घास की गठरी देखी तो उसमें खेत की पैदावार का एक भी पेड़ नहीं था। साहूकार के बेटे ने उसे गलत खबर दी थी और वह उसे पाकर यों ही उठा चला आया,—इसका उसे दुःख था। उसने साहूकार के बेटे की ओर मुँह करके कहा,—"तूने मुझे गलत खबर दी बेटे! चौधरी की घास की गठरी में तो गेहूँ की एक भी डाल नहीं"

और वह गर्दन नीची किये वहाँ से चला गया। साहूकार का बेटा भी टुलमुलाता हुआ एक ओर को निकल गया।

जब सब चले गये तो झुनिया ने आश्चर्य से पूछा,—"बाबा? यह घास भी इन खेतों वालों की है तो फिर जिन लोगों के पास खेत नहीं हैं वह अपना पेट कहाँ से भरें?"

"मजदूरी से बेटी!" झुनिया के सिर पर प्यार भरा अपना सूखा-ठिठुरा हुआ हाथ रखते हुए दातादीन ने कहा।

रमधनिया ने यह काण्ड देखा तो वह भयभीत-सी होउठी थी परन्तु आज उसने दातादीन में जिस धैर्य के दर्शन किये वह देवताओं में भी दुर्लभ था। रमधनिया को अपने सुसर के धैर्य से बल मिला,—साहस की पराकाष्ठा थी वह।

झुनिया मौन होगई दातादीन का उत्तर सुनकर,—परन्तु कुछ सोच रही थी वह।

दातादीन मुस्कराते हुए बोला,—"बेटी झुनिया! यह पटवारी मेरे अहसानों से दबा है।" और फिर इस बुढ़ापे में भी दातादीन ने अपने फटे-पुराने कुर्त्ते की दोनों बाँहों को ऊपर चढ़ाते हुए कहा,—"तेरे बाबा की इन बाँहों ने वह कौन है ऐसा इस बस्ती में जिसे दबा नहीं रखा है अपने अहसानों से। दातादीन जिन्दगी भर दूसरों के काम आया है। अपने काम का नुकसान करके दातादीन ने दूसरों का काम किया

है, अपने खेत सुखा कर दूसरों के खेत भरे हैं।" इतना कहकर दातादीन ने एक गम्भीर साँस ली। फिर रमधनिया की ओर मुँह करके बोला,—"बेटी रमधनिया! बस, झुनिया की शादी इन आँखों के सामने देखना चाहता हूँ।"

दातादीन रो रहा था। उसके नेत्रों से आँसू की बूंदें ढुलक-ढुलक कर घास के अंकुरों पर लटकने वाली ओस की बूँदों में मिलगईं। उसके आँसू प्रकृति के आँसुओं में विलीन होगये।

रमधनिया ने फिर दातादीन के साथ, मिलकर घास के गट्ठे बँधवाये।

घास का गट्ठा सिर पर लिए आगे-आगे दातादीन था,पीछे रमधनिया और बीच में झुनिया चल रही थी। एक घघरी, सिर पर ओढ़नी, शरीर में ऊँची-सी कुर्ती और पैर नङ्गे थे झुनिया के। वह रमधनिया के सामने-सामने चलरही थी,—रमधनिया की दुनियाँ उसके सामने थी। झुनिया, के एक-एक पग-चाप पर रमधनिया बलिहारी जाती थी।

घर के अहाते के पास पहुँचे तो चहारदीवारी की कच्ची दीवाल के ऊपर से ही गय्या घास की गठरी देखकर रम्भाने लगी। झुनिया की दादी धूप में पीढ़ा डाले चर्खा कात रही थी। उसे तो और कुछ काम ही नहीं था आज कल।

रमधनिया ने आज से सात वर्ष पुरानी इस झोंपड़ी के स्थान पर एक कोठा बना लिया था। यह कोठा दातादीन के पहले मकान के कोठे से बड़ा था। दालान और दुबारी बनाने का उसे खयाल ही नहीं था। इस कोठा बनाने-ही-बनाने में तीन वर्ष जाने किधर को निकल गये इस परिवार के।

अब झुनिया बड़ी हो गई थी। झुनिया की शादी करने की ओर सब का ध्यान था। झुनिया की दादी तो मानो सूत कातने की मशीन ही बन गई थी। उसके चर्खे के हर तार में उसे झुनिया की शादी दिख-लाई देती थी। उसने अपनी सारी शक्ति को चर्खे से निकलने वाले तारों में केन्द्रित कर दिया था।

झुनिया अपनी दादी के पास बैठकर न जाने कितनी बातें करती थी। दादी का दिल गद्‌गद् हो उठता था झुनिया की बातें सुनकर। कितनी समझदार थी उसकी पोती,—कितना संतोष था उसमें। चन्दू का गोल बड़ी-बड़ी आँखों वाला मुँह मानो भगवान् ने वहाँ से छुटा कर झुनिया के लगा दिया था ज्यों-का-त्यों।

अपने बाप के बारे में जब कभी झुनिया के मन में कोई बात आती तो वह दादी से उसका जिक्र नहीं करती थी। वह जानती थी कि उसका जिक्र करने से दादी उदास हो जाती थी। दादी के दिन में दस काम करती थी झुनिया। दादी का चरखा बिछाना, चरखे के पास पीढ़ा बिछाना, पास ही मिट्टी के झाँवले में उपले की आग तापने के लिए भर कर रखना और एक कड़ियल में थूकने के लिये राख रखना झुनिया कभी नहीं भूलती थी।

फिर रात को दादी के लिए खटिया भी झुनिया ही बिछाती थी और उसपर फटा हुआ बिछौना भी। दादी के लेटने पर धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर भी कभी-कभी झुनिया दाब देती थी,—कितनी प्यारी थी झुनिया, दादी की आँखों का तारा थी।

रमधनिया को नाज था अपनी मोरनी सी झुनिया पर, जिसके सामने आते ही रमधनिया के जीवन में एक नई लहर उठ खड़ी होती थी,—एक नई दुनियाँ! रमधनिया की दुनियाँ नहीं, झुनिया की दुनियाँ! झुनिया की रंगीन दुनियाँ,—झुनिया की शादी होगी, झुनिया का दूल्हा आयगा, झुनिया के बच्चे होंगे.....

रमधनिया के बाल पकने लगे थे अब।

धीरे-धीरे आठ वर्ष बीत गये। आशा और साधारण जीवन की निराशा ने रमधनिया के जीवन का रस सोख लिया था। जवान होने पर भी वह बुढ़िया-सी जचने लगी। दातादीन और झुनिया की दादी तो अब हो ही गये थे बूढ़े।

इस दस वर्ष के संघर्ष में रमधनिया ने दातादीन का बेटा बनकर

साथ दिया। साथ ही नहीं दिया रमधनिया ने बल्कि इस गृहस्थी को चलाया, और इज्जत के साथ चलाया। आठ वर्ष के भीतर दातादीन को कभी एक पैसा किसी से कर्ज का नहीं लेना पड़ा। यही तो वह कह रहा संध्या को अकेले में झुनिया की दादी के पास बैठा—"झुनिया की दादी ! तू क्या जानेगी अपनी बहू के गुणों को ?"

"मैं नहीं जानूंगी तो क्या तू जानेगा।" तुनककर गर्व के साथ झुनिया की दादी ने चर्खे का तार पिंदिया पर डाल कर हाथ रोकते हुए कहा। "घर चलाना काम ही औरतों का है और फिर मेरी बहू....." वह बोल न सकी आगे। बहू को तारीफ वह कर नहीं सकती थी। बहू की तारीफ करना शुरू करते ही उसे चन्दू की याद आजाती थी। वह अपने गर्व को ठेस लगते देखकर इस बुढ़ापे में भी तिलमिला उठती थी।

दातादीन पर उसकी हकूमत थी और दातादीन इसे मानता था। वह मुस्कराकर कहता,—"मुझे तो सुधार दिया तूने लेकिन अपने चन्दू बेटे को न सुधार सकी,—बहू भी उसे न रोक सकी। एक तूफान था उसमें और वह उठकर टकरा ही गया।" कहकर दातादीन चुप हो गया। एक दर्द-सा उठने लगा उसके सीने में।

चन्दू की माँ कुछ नहीं बोली लेकिन वह रमधनिया के इस कसूर को माफ़ नहीं कर सकती थी। उसके विचार से यदि रमधनिया चाहती तो उसका चन्दू कभी जेल न जाता।

अपनी यह धारणा कभी-कभी झुनिया की दादी को भी अपने दिमाग का फितूर-सा मालूम देने लगती परन्तु वह रोक भी नहीं सकती थी अपने इस विचार को। इस विचार को ठेस लगने से चन्दू की माँ के गर्व का किला, वह किला जिस पर उसके यौवन की विजय का झंडा फहराया था,—झंडा फहराया था दातादीन के दिल पर, धराशायी हो जाता। यह गर्व ही आज झुनिया की दादी के जीवन की वह अक्षुण्ण शक्ति थी जिसके आधार पर उसकी बूढ़ी हड्डियाँ दधीचि की हड्डियों का बल लेकर अबाध गति से चर्खे का तार पिन्न-पिन्न कातती

चली जा रही थीं।

इसी समय झुनिया ने सामने आकर बाबा को खाने का संदेशा दिया। दातादीन ने अपनी थाली वहीं मँगाली। झुनिया की दादी पास बैठी चरखा कातती रही और उसी जगह बैठकर दातादीन ने प्याज, मिर्च की चटनी, मट्ठा और गुड़ की एक डली के साथ खाना खाया।

खाने में दातादीन ने बार-बार स्वाद किये साहूकार का बेटा बाहर की दीवार के कोने से झाँक रहा था। उसने महसूस किया कि वह दातादीन का सब कुछ लेने पर भी उससे उसकी शांति न छीन पाया। उसके हृदय पर एक चोट लगी, उसे अपने में गिरावट महसूस हुई और उसके झूठे गर्व ने उसे दोनों हाथों से पकड़कर झकझोर दिया। वह तिलमिला उठा,—उसे अपनी शक्ति का गढ़ ढहता-सा प्रतीत हुआ। उसकी आँखों के सामने दातादीन की वह मोटी और सूखी भुजाएँ आगईं जिन्होंने दो बार अपनी मेहनत से उजड़े हुए घर बसाये थे, बनाये थे। उसने आज तक इस जमीन पर पैदा होकर कुछ बनाया ही था, मिटाया नहीं।

: ६ :

दातादीन ने चन्दू की माँ को साहूकार के बेटे की पूरी हरकत सुनाई तो वह मुस्कराने लगी। शायद जवानी के दिनों में यदि वह सुनपाती तो वह करारी फटकारें बतलाती पटवारी और उस साहूकार के बेटे के बाप को कि, मिजाज दुरुस्त कर देती। एक दबदबा था जवानी के दिनों में चन्दू की माँ का इस गाँव में। पटवारी काँप कर ड्योढ़ी पर चढ़ता था; और साहूकार.....उसकी तो कभी जबान ही नहीं हिली चन्दू की माँ के सामने।

"अपने बाप का हमारी ड्योढ़ी पर गिड़गिड़ा कर चढ़ना भी भूल गया साहूकार का बेटा," चर्खा थामते हुए चन्दू की माँ ने कहा।

"हमारा वख्त जो खराब है चन्दू की माँ। कोई गिरह सिर पर आगई है, वरना दातादीन की मूँछें नीचे जानेवाली नहीं थीं। लेकिन फिर भी मैंने एहसान किसी का नहीं लिया चन्दू की माँ! पटवारी को वह पाजी लड़का धोखे से लेआया, वरना आने वाला नहीं था वह। उसे बाद में बड़ा अफसोस हुआ अपने आने पर।"

यह सुनकर चन्दू की माँ बोली,—"भला आदमी है पटवारी भी, बुरा नहीं है बेचारा। किसी के भले में नहीं है, तो किसी के बुरे भी नहीं है।"

"लेकिन कमाई तो खूब की है चन्दू की माँ, उसने हमारे गाँव में।" दातादीन बोला।

"की होगी। अपने को इससे क्या? करता ही है जिससे बन पड़ती

है।" और इतना कहकर चन्दू की माँ ने एक गहरा साँस लिया। एक अन्धकार पूर्ण बीता कल उसके सामने आगया। वह दिन कितना भयानक था जिस दिन चन्दू जेल चला गया था और दातादीन बीमार होकर खटिया से लग गया था। घर में दूसरे दिन खाने के लिए भी नहीं था। सब कुछ घर का लुट गया था और कर्ज....कर्ज हो गया था...फिर घरबार भी सब जाता रहा। चन्दू की माँ के जीवन की प्रगति वहाँ जाकर रुक गई। वह गृहस्थी को आगे चलाने का मार्ग न निकाल सकी।

उस समय रमधनिया ने गृहस्थी को चलाने का भार अपने ऊपर लिया। दातादीन और चन्दू की माँ ने अपनी सब ताकतों को रमधनिया के अर्पण कर दिया और रमधनिया.....

रमधनिया ने घर सँभाला और शान के साथ सँभाला। थी गरीब ही, लेकिन खाने कपड़े का प्रबन्ध उसने कर लिया। इसी में से कुछ काट-कपट कर रमधनिया झुनिया की शादीके लिए भी करती जाती थी।

रमधनिया ने आज, जब दातादीन और चन्दू की माँ बाहर चौक में बैठे बातें कर रहे थे तो, उनके सामने दस तीयलें निकाल रख दीं। पाँच लहँगों पर पाँच ओढ़ने थे, रंगीन गोटे लगे हुए, और उनके ऊपर पाँच आँगियाँ कसी हुई थीं। इनके अलावा पाँच कोर्स की धोतियों पर लम्दराज का दो-दो गज कपड़ा था। कलावे से बँधी थीं सब तीयलें। एक करीने के साथ।

दाता दीन और चन्दू की माँ इन्हें देख कर दंग रह गये। यह सामान रमधनिया ने झुनिया की शादी के लिए तय्यार किया था, यह कहने की बात नहीं थी।

लहँगे और ओढ़ने सब चन्दू की माँ के काते हुए सूत से तय्यार किये गये थे। कपड़ा हाथ में आते ही चन्दू की माँ ने पहचान लिया। "देखा औरतों का काम।" चन्दू की माँ ने कहा। "चन्दू ही मेरा नालायक निकल गया। अगर ढंग से चलता तो रमधनिया-सी बहू

पाकर क्या कुछ नहीं कर सकता था ?" आज पहली बार झुनिया की दादी ने यह शब्द कहे।

रमधनिया पीछे खड़ी सुन रही थी। दातादीन को भी आज यह वाक्य चन्दू की माँ के मुख से सुनकर इतना सुख हुआ कि वह चन्दू की माँ से एक शब्द भी न बोला। कुछ देर सभी मौन रहे।

इतने में गुनिया झुनिया के साथ अन्दर अहाते में घुस आई। मुनिया को चन्दू की माँ ने बुढ़ापे में भी खड़ी होकर पीढ़ा दिया और बिठला कर तीयलें दिखलाती हुई बोली,—"मुनिया बेटी ! यह देख तो, झुनिया की शादी का सामान। गरीबी में भी जो कुछ बन पड़ा है कर रहे हैं तेरे ताऊ।"

"नाँ बेटी ! मैंने कुछ नहीं किया है इसमे मुनिया ! यह सब तो हमारी बहू ने ही किया है।" दातादीन बोला और इस समय उसका रोम-रोक पुलकायमान था।

मुनिया देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उद्‌गारों में भरकर बोली,—"ताऊ ! देवी बहू दी है तुम्हें भगवान् ने।"

"सचमुच देवी है मेरी बहू !" चन्दू की माँ ने प्रसन्नतापूर्वक कहा। आज चन्दू की माँ वास्तव में बहुत प्रसन्न थी। इन तीयलों के रूप में चन्दू की माँ ने अपनी चर्खे पर की हुई साधना का फल भगवान् से पा लिया।

भगवान् ने उसे सब कुछ दिया था,—उसे संतोष था।

अब तो झुनिया की शादी ही वह धूमधाम के साथ अपनी आँखों के सामने देखना चाहती थी।

शरीर से अब चन्दू की माँ का विश्वास उठता जा रहा था। वह उसे कुछ कमजोर और रोग-ग्रस्त-सा दिखलाई देने लगा था। पता नहीं कब जवाब देजाय।

दादी और बाबा, दोनों अपनी अनुभवी आँखों के सामने झुनिया को जिन्दगी की नौका पर चढ़ा देना चाहते थे। वह चाहते थे कि

उनके देखते-देखते झुनिया अपने जीवन की पतवार सँभाल ले।

जब झुनिया के स्वस्थ यौवन पर उनकी नजर जाती थी तो उन्हें अपनी बच्ची संसार का एक अनमोल रत्न दिखलाई देती थी। उस जैसा सुन्दर उन्होंने आज तक जीवन में केवल चन्दू ही देखा था।

रमधनिया भी जब गाँव में आई थी तो उस वर्ष गाँव में आने वाली बहुओं में उसका पहला नम्बर था। गजब के सौंदर्य का निखार था। यौवन फूटा पड़ता था। चन्दू की माँ ने रमधनिया का जो रूप उस समय देखा, वही इस समय झुनिया में था। चन्दू और रमधनिया का मानो एकीकरण हो गया था झुनिया में। नक्शा एक का था तो उभार दूसरी का, नेत्र रमधनिया के थे तो नाक का उभार चन्दू का, गर्दन चन्दू की थी तो होठ रमधनिया के। सब कुछ सुन्दर-ही-सुन्दर था वहाँ।

मुनिया की दृष्टि भी झुनिया के उभरते हुए यौवन पर गई तो उसे अपनी जवानी याद आगई। अपनी सुसराल वालों का व्यवहार उसे याद आया।

अच्छे वर की समस्या मुनिया के विचारों में आकर खटकने लगी। जरा भी खाता-पीता घर होता है तो मुँह फट जाता है। दूसरे का दिया-लिया कुछ जचता ही नहीं उन्हें; और बेटी तो मानो उनकी बाँदी बनाकर ही सेवा के लिए भेजी जाती है। और फिर अगर वह कहीं बीमार हो जाय तो उसे उसके पीहर वालों के यहाँ पटक दिया जाता है।—मुनिया के दिल में एक दर्द-सा उठने लगा झुनिया की मनोहर मूर्ति को देखकर।

झुनिया कोठे के सामने रमधनिया के पास बैठी बातें कर रही थी।

"तू चुप क्यों हो गई मुनिया! यह मैं समझ गया। तू झुनिया के लिए परेशान मत हो। भगवान् को जो मंजूर है वह होगा। मैं जानता हूँ जो होने वाला है उसे मैं नहीं बदल सकता। इसलिए मैंने अपने को जब तक मजदूरी कर सकूँगा मजदूरी करने और जब न कर सकूँगा तब जैसी मुझ पर पड़ेगी उसे सहन करने के लिए छोड़

दिया है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता मुनिया !"

और दातादीन इस समय प्रसन्न था। वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। दुनियाँ पर वह हँस रहा था। परिस्थितियाँ उसका मजाक बनाना चाहती थीं परन्तु उसने दुनियाँ को मजाक समझ कर अपनी आँखों की पुतली नीले आसमान पर बिछा दीं।

मुनिया आज दातादीन के अन्दर कुछ-कुछ झाँक सकी। कितना गहरा कितना गम्भीर, कितना निश्चल, कितना कर्तव्यारूढ़,—दातादीन एक अनथक यात्री था, जिसने जिन्दगी के सदमे उठाये थे, विचलित भी वह कभी-कभी हो गया था अपने रास्ते से; लेकिन उसने चलना बन्द नहीं किया। वह किसी से दब कर नहीं चला,—उसने किसी का बुरा नहीं चेता।

दातादीन हँसता हुआ बोला,—"मुनिया बेटी ! मैं झुनिया की शादी करूँगा। मैंने चन्दू की शादी की थी। झुनिया की शादी चन्दू को करनी चाहिए थी, लेकिन वह नालायक निकल गया। उसने अपने माँ-बाप को दोहरे बोझ से लाद दिया, धोखा दिया उन्हें।

"दब हम जरूर गये थे मुनिया,—लेकिन हमारी बहू ने हमें उबार दिया, और अब मुझे यकीन है कि हमारी बहू झुनिया की शादी खूब आन-बान के साथ करेगी।"

मुनिया को बहुत सुख मिला दातादीन की यह बातें सुनकर।

रमधनिया पर मुनिया को भी पूरा-पूरा विश्वास था। गढ़े में जाती हुई इस गृहस्थी को किस तरह उसने उबारा वह मुनिया से छिपा नहीं था।

मुनिया ने आज जब झुनिया के सामने रमधनिया से झुनिया की शादी की बात की तो वह लजाकर दादी, बाबा के पास दौड़ गई, जंगल की हिरनी के समान।

रमधनिया ने अपनी झुनिया को घर-बाहर का काम-काज वक्त निकाल कर किस ढंग से सिखलाया था, यह वही जानती थी। घर

का सभी काम-काज करना झुनिया खूब जान गई थी। काम झुनिया के सामने नाचता था। फुर्ती उसमें कमाल की थी। थी मस्ती भी और कभी-कभी वह इठला कर लेट जाती थी तो लाख कहने पर भी फली फोड़कर नहीं देती थी, लेकिन जब जुट जाती थी काम पर तो पाँच-पाँच औरतों का काम चुटकी में खींच कर फेंक देती थी।

"अब तो बेटी का सुख उठा रही हो बहू!" मुस्करा कर मुनिया बोली।

रमधनिया ने मुनिया के लिए टाट का टुकड़ा अपने नीचे से निकाल कर बिछा दिया। फिर पैर लगी वह मुनिया के और मुनिया की मुस्कराहट में अपनी मुस्कान मिलाकर प्रसन्नता-पूर्वक बोली,—"ननदजी! बेटी का सुख भी भला किसी ने देखा है। बेटी तो दूसरों का धन है।"

"लेकिन धन करके कोई माने भी बहू! मानते तो कूड़ा करके हैं। अपने कपूत और आवारा भी आँखों के तारे लगते हैं और दूसरे के दिल की टुकड़ियाँ भी दुनियाँ को कूड़ा-करकट ही जचती हैं।" गम्भीरता-पूर्वक झुनिया ने कहा।

रमधनिया इस पर कुछ न बोली। मुनिया के हृदय का यही मर्मस्थल था। उसके दिल पर एक गहरी चोट मारी थी उसके सुसराल वालों ने। उसके आत्म-सम्मान को ललकारा था।

"झुनिया की शादी की तीयलें देखीं बहू! बहुत खुशी हुई। मेरी झुनिया को अच्छा वर मिल जाय, मैं तो भगवान् से सदा यही माँगती हूं।" मुनिया प्रसन्न होकर बोली। इस समय मुनिया के मुख का भाव बिल्कुल बदल गया था।

मुनिया के मस्तिष्क में पुरानी घटनाएँ कभी-कभी यों ही उभर आती थीं, परन्तु मुनिया ने उनपर विजय पाना सीखा था। वह दुनियाँ की खुशी में खुश होना और रञ्ज में रञ्जीदा होना जान गई थी।... और झुनिया; उसे तो पिछले आठ-नौ वर्षों से पाला ही मुनिया ने

था। मुनिया के जीवन में एक काम लग गया था झुनिया का। सुबह की बासी रोटी उसे झुनिया के बिना स्वाद नहीं लगती थी। फिर भी दिन में दो-चार बार जब तक वह झुनिया को देख नहीं लेती थी, उसे चैन नहीं पड़ता था।

प्यारी झुनिया को भी मुनिया बहुत थी। दोपहर के खाने के बाद जब मुनिया को दातादीन के घर आने में देर हो जाती तो झुनिया की दृष्टि उसी की खोज में अपनी कच्ची दीवार फाँद कर दगड़े में फैल जाती थी। बर्तन माँजते हुए एक ओर वह कसेंडी को जूने से रगड़ती थी और दूसरी ओर उसके कान मुनिया के लीतरों को अहाते में घुसने की आवाज सुनने के लिए आतुर बने रहते थे।

झुनिया मुनिया को अपनी दूसरी माँ गिनती थी,—और आदर भी वह मुनिया का बहुत करती थी। पिछली बार मुनिया जब बीमार पड़ गई तो दस दिन तक झुनिया ने ही मुनिया के बाप का खाना बनाया था। मुनिया के घर का सब काम-काज उसी ने सँभाला था। बीमारी में मुनिया का काम भी उसने इस तरह लगकर किया कि वह मनिया की आँखों में बसगई।

झुनिया की उभरती जवानी को देखकर आज मुनिया को भी लगा कि उसकी शादी हो ही जानी चाहिए। उम्र कुछ इतनी आगे नहीं बढ़ी थी झुनिया की कि जिसे बढ़ना कहा जा सके,—लेकिन स्वतंत्र वातावरण में बाबा, दादी और माँ के प्यार में पली झुनिया—स्वाभाविक उभार लिए जीवन के मुक्त स्रोत के समान तीखी और स्वच्छन्द थी। झुनिया के चुभते हुए सौंदर्य-प्रवाह पर भी मुनिया की दृष्टि गई। झुनिया को नौजवानी में पगी फूल के मानिन्द सुन्दर और मीठी उसने पाया। मुनिया बोरी पर कोठे की दीवार से कमर लगाकर बैठ गई और रमधनिया से बोली,—"बहू ! लड़का अच्छा देखना चाहिए। रुपये पैसे वाले घर में लड़की को भेजना लड़की की जिन्दगी बरबाद करना है।"

यह बात मुनिया को रमधनिया के मन लगती थी और अच्छा घर बार देखने की उसमें ताकत ही कहाँ थी। वह तो किसी तरह लड़की के हाथ पीले करने का ढंग सोच रही थी। वह चाहती थी कोई मेहनती आदमी मिल जाय जो मेहनत से अपना और उसकी झुनिया का पेट भर सके।

बस यही उसकी इच्छा थी,—उसने मुनिया से कहा।

मुनिया बोली,—"तुमने बहुत ठीक सोचा है बहू ! इज्जत के साथ हाथ पीले हो जायँ यही सब कुछ है। अब ताऊ को चाहिए कि किसी मेहनती लड़के की खोज करे।"

"तुम भी ननद जी ! अपने बापू....."

"यह भी भला कुछ कहने की बात है बहू ! मैं अपनी झुनिया के लिए सब कुछ करूँगी।" मुनिया ने रमधनिया को आश्वासन दिया।

मुनिया ने रमधनिया की पिछले आठ वर्षों में हर कठिनाई के समय सहायता की थी। रमधनिया के मुसीबत के समय उसने और उसके पिता ने आगे बढ़कर उसका और दातादीन का हाथ पकड़ा था। रमधनिया को मुनिया पर पूर्ण विश्वास था।

"तुम्हारा कितना बड़ा सहारा है मुझे ननद जी !" रमधनिया ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा।" "कभी-कभी ऐसा लगता है मानो भगवान् ने मेरी ही मदद के लिए तुम्हें इस गाँव में पैदा किया है।"

"दर्द से दर्द जाकर अपने आप मिल जाता है रमधनिया ! यह तुम्हारे जीवन की दर्द-भरी कहानी है जिसने मुझे तुमसे लाकर मिला दिया और हम मिलकर चल सके इसका कारण मेरे और तुम्हारे दिल की ईमानदारी है। भगवान् करे हम दोनों एक दूसरे के मुसीबत में इमानदारी से काम आते रहें।" मुनिया गम्भीरता पूर्वक बोली। मुनिया के शब्दों में एक अनोखी ही ऐंठ-सी रहती थी, परन्तु उस ऐंठ के नीचे कितनी दया छुपी थी यह पता रमधनिया और झुनिया के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं था और था कुछ-कुछ मुनिया के पिता को, जिसकी सेवा के लिए

उसने अपनी सुसराल का मोह त्याग दिया था।

मुनिया के जीवन में मानो सुसराल, सास, सुसर, पति इन सब की एक धुँधली-सी झाँकी भर आकर रहगई। वह क्या होते हैं यह मुनिया न जान सकी।

और रमधनिया ने केवल सुसराल ही जानी थी, जाना था पीहर में भी एक मजदूरिन की तरह सोलह वर्ष तक चक्की पीसना, बर्त्तन माँजना, घास खोदना, कुट्टी काटना, सिल्ले चुगना यही काम उसने किये थे। और उसका बाप अपने घर के सामने नीम के पेड़ के नीचे बैठा हुक्का सुड्याता था, ताश खेलता था। पुलिस के रजिस्टर में उसका भी नाम था और रात को पुलिस का सिपाही उसे आवाज लगाने आता था।

यही आवाज रमधनिया ने जिस दिन चन्दू के लिए सुनी तो उसके पैर काँपने लगे थे। लेकिन यहाँ तो उसने चन्दू का दस साल के लिए जेल चला जाना भी सना। सुना और सहन किया,—एक बहादुर औरत की तरह सहन किया।

: १० :

झुनिया का रमधनिया को बड़ा सहारा था। अब तो वह रमधनिया का कितना ही काम चुटकियों में करके फेंक देती थी। रमधनिया जब चक्की का पहला कौर[1] डालती तो झुनिया उठकर खड़ी होजाती थी। पहले अपनी माँ के साथ बठकर चक्की पिसवाती और जब जरा उजाला होने लगता तो चक्की छोड़कर चूल्हे पर बासी रोटियों के काम से जुट जाती थी। रमधनिया के चक्की का आटा उठाने और आटे की गोल में भरते-भरते वह बासी रोटी पो डालती तथा परात धोकर खड़ी कर देती थी और फिर तय्यार हो जाती अपनी माँ के साथ सिल्ला [2] चुगने के लिए जाने को।

"अब जा रही हो बेटी सिल्ला चुगने", झुनिया की दादी चर्खे पर बैठ कर झुनिया से पूछती।

---

१. चक्की के मुँह में डाले जाने वाले एक बार के अनाज को कौर कहते हैं।

२. जब खेतों से गेहूँ, जौ, मटर, चना इत्यादि की फसलें काट जाती हैं तो उन खेतों में कुछ अनाज सूखकर कटने से पूर्व झड़ जाता है, पड़ा रह जाता है। इस अनाज को खेतवाले किसान की औरत कुछ अपने घर की औरतों और मजदूरिनों से चुगवा लेती है। इसे ही 'सिल्ला चुगना' कहते हैं। मजदूरों को चुगे हुए अनाज का कुछ भाग मजदूरी के रूप में देदिया जाता है।

झुनिया कहती, "हाँ दादी ! माँ तय्यार होगई। लो तुम भी रोटी तो खालो। तुम्हें खिलाकर ही जाऊँगी मैं ।"

और झुनिया की दादी वहीं चर्खे पर बैठी-बैठी दो रोटियाँ हाथ में लेकर मिर्च या प्याज की चटनी से खा लेती। झुनिया के प्यार-भरे मुंह पर देखकर झुनिया की दादी को यह सूखी मिस्सी रोटियाँ, पानी के हाथ की, मीठी लगने लगती थीं, उनमें न जाने उसे कितना स्वाद आता ।

दादी का सब काम ठीक से जमाकर झुनिया दातादीन वाली गाढ़े की चादर कंधे पर डाल, रमधनिया के साथ खेत जाने को तय्यार हो जाती। अपनी फूलदार ओढ़नी को बड़ी शान से ओढ़ती थी झुनिया। उस पर गोटा लगा था और वाकई जब मुरगायदा[२] मारकर ओढ़नी का चमकदार गोटा उसकी लम्बी सुडौल गर्दन में आकर रेखा बनाता था तो ऐसा लगता था मानो चित्रकार ने सुराही की गर्दन में अपनी सुनहले रङ्ग की तूलिका चलाई थी ।

"तू भी तो दो रोटी खाले झुन्नो !" 'रमधनिया प्यार में झुनिया को झुन्नो ही कहकर पुकारती थी और यह प्यारा का नाम उसे उसकी बुआ मुनिया ने दिया था। जब झुनिया को मुनिया 'झुन्नो' कहकर पुकारती थी तो झुनिया के दिल में स्नेह की गुदगुदी-सी उठने लगती वह अन्दर-ही-अन्दर प्यार में फूल कर कुप्पा हो जाती और इन दो मीठे शब्दों के सुनने में उसे कितना आनन्द आता यह उसकी मुस्कराती हुई मुद्रा और मस्तानी पंजों-ही-पंजों के बल चाल के अलावा और कोई स्पष्ट नहीं कर सकता था। वह चाल तो कह डालती थी झुनिया के मीठे दिल के सलौने सपने ! जवानी पर प्यार की रेखा खिंच जाती थी। उसमें मिठास आ जाता था और नेत्रों की पुतलियाँ

---

२. ओढ़नी को सीधे हाथ से लपेट कर सँभालने के लिए बाँये कंधे पर डालना।

मजबूर हो जाती थीं अपने अन्दर भरी हुई मस्ती की उमङ्गों को बाहर उडेल देने के लिए। झुनिया की सादी जवानी का सौंदर्य आज छाया हुआ था दातादीन के इस कच्चे कोठे और कच्ची चहार दीवारी वाले जोहड़ के किनारे के घर पर। यही था झुनिया के यौवन का वह मधु-मास जिसने दातादीन, झुनिया की दादी और रमधनिया जैसे सूखे और झुलसे हुए वृक्षों पर भी अपनी छटा बखेर कर उन्हें रङ्गीन बना दिया था,—एक उमङ्ग और उत्साह भर दिया था उनके जीवन में। झुनिया इन तीनों वृक्षों पर लगने वाली कलिका थी, जिसकी जवानी का फूल विकास की ओर बढ़ रहा था।

नतने में बँधी रोटियाँ दिखलाकर झुनिया कहती,—"यह बाँधली हैं माँ! बाबा के पास बैठकर खाने में बहुत अच्छी लगती हैं बासी रोटी।" और इतना कहकर वह मटक कर चारों ओर नाच जाती,—स्वाभाविक यौवन की मस्ती में और आँखों की पुतलियों को वह तरेरा देती कि उसे देखकर रमधनिया अपने जन्म जन्मान्तर के दुखों को भूल जाती,—मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं। वह हमेशा से ऐसी ही थी।

यह शब्द झुनिया की दादी के कानों में पड़ते तो मानो अमृत घुल जाता। झुनिया का प्यार दातादीन के लिए देखकर वह अन्दर-ही-अन्दर प्रसन्नता में निमग्न हो जाती और नेत्र बन्द कर लेती एक क्षण के लिए।

फिर रमधनिया और झुनिया चल देतीं कोठे का कुन्दा लगा कर अपने रोजाना के काम पर। कुत्ते-बिल्ली की हिफाजत के लिए रहती ही थी वहाँ झुनिया की दादी।

इस वर्ष सिल्लों का काम रमधनिया और झुनिया ने जी तोड़ कर किया। झुनिया को इस साल से पहले कभी रमधनिया घर से बाहर के काम पर नहीं ले गई थी, लेकिन इस साल तो उसके सिर झुनिया की शादी का भूत सवार था। उसे इस वर्ष यह काम हर हर हालत में सम्पन्न करना था।

रमधनिया अगर दो औरतों के बराबर सिल्ला चुगती थी तो झुनिया चार औरतों के बराबर और क्या मजाल जो इन दोनों के चुगे सिल्ले के बाद खेत में एक बाल भी पड़ी रह जाती। खेतों वाले किसानों की औरतें रमधनिया और झुनिया से सिल्ला चुगवाने में बहुत खुश रहती थीं और इन्हें हिस्से से एक दो मूठ बाल और अधिक ही दे देती थीं। गेहूँ के खेत में चुगती थीं तो चुगाई का दसवां हिस्सा पा जाती थीं; जौ, मटर, चना इत्यादि का खेत होता था तो तिहाई का अनाज मिल जाता था,—मतलब यह कि जो कुछ भी मिल जाता था इससे अधिक सरोकार न रखकर खूब जुटकर काम करती थीं। बस इसी ओर माँ बेटी का ध्यान रहता था।

संध्या को अपना हिस्सा बँटवाकर झुनिया उसे गाढ़े की चादर में बाँध लेती और फिर माँ-बेटी चल देती थीं फिर घर की ओर। रमधनिया जब अपनी और अपनी बेटी की दिन भर की मेहनत की उस गठरी की ओर देखती तो उसका मन गर्व से तरङ्गित हो उठता था,—परन्तु गर्व को दबाकर सूखे मुख पर मुस्कान बिखराने की कला में वह अब निपुण हो चुकी थी।

"झुन्नो! आज तो बहुत सिल्ला चुगा है तूने।" रमधनिया रास्ते में प्यार-भरी थपकी झुनिया की पीठ पर देकर कहती।

"माँ! बालें ही बहुत पड़ी थीं इस खेत में। बिछौना-सा बिछा हुआ था! बस समेट-समेट कर भर लिया मैंने चादर में।" आँखों की पुतली घुमाकर झुनिया कहती। "दिन ही छिप गया माँ! नहीं तो आज बहुत सिल्ला चुग डालती, पूरा खेत-का-खेत बटोर डालती।" और इतना कहकर झुनिया अपनी मां के प्रसन्न चेहरे पर नेत्रों ही नेत्रों में प्यार पाने के लिए देखती।

"तू तो चाहती है दिन ही न छिपे झुन्नो! और बस तू सिल्ला ही चुगती रहे।" रमधनिया कहती और सचमुच अपने हृदय का प्यार अपनी दृष्टि के द्वारा झुनिया के नेत्रों में उंडेल देती।

"माँ, नाज वाले खेत में सिल्ला चुगते बड़ा मन लगता है। पर जब ऐसा खेत सामने आजाता है कि जिसमें छड़ी-छीदी कहीं कोई बाल दिखाई देजाती है तो जी कुढ़ने लगता है। बुरा लगता है माँ।" झुनिया नाँक चढ़ा कर कहती।

"बुरा न लगे तो क्या हो बेटी! सारा वख्त जो खराब हो जाता है। वख्त ही तो हम मजदूरों की दौलत है। अगर वही खराब हो जाय तो हम लोग पेट कहाँ से भरें।" सरलता से रमधनिया कहती।

और झुनिया माँ की बात को अपने पल्ले की गाँठ में बाँध लेती। कितनी संजीदा थी रमधनिया की झुग्गी। जो बात एक बार बतला दी वह कभी फिर जिन्दगी में दुहराने की जरूरत ही न महसूस हुई। पत्थर पर लकीर खींच दी मानो।

यहाँ से झुनिया और रमधनिया अपनी सिल्ले की गठरी लिए वहाँ पहुँचते जहाँ दातादीन ने दिन भर की खोदी हुई घास का ढेर लगाया होता था और वहां पहुँकर सिर की गठरी को गेंठ की तरह एक ओर फककर झुनिया अपने बूढ़े बाबा से लिपट कर कहती,—"कितने अच्छे हो तुम मेरे बाबा! कितनी घास खोद डाली तुमने? बाबा, थोड़ी देर आराम भी कर लिया करो बीच-बीच में।"

"आराम-आराम से ही खोदी है झुनिया बिट्टो!" प्यार से बाबा कहता। "और तुम माँ बेटियों ने तो आज पूरा गठ्ठ-का-गठ्ठ मार लिया है सिल्ले का। रामू के खेत पर गई थीं क्या आज?" दातादीन आश्चर्य से पूछता।

"नहीं बाबा! जगना के खेत पर। बहुत सिलियारियां[1] थीं, लेकिन हमसे ज्यादा कोई सिल्ला नहीं चुग सकी। और हाँ! बिचारी कल्लू की चमारी भी आई थी सिल्ला चुगने लेकिन....."

"लेकिन क्या बेटी!" दातादीन ने भयभीत-सा होकर पूछा।

"उसे गश आगया बाबा! बेहोश हो गई, बड़ी कमजोर थी वह—

१. सिल्ला चुगने वाली।

शायद कुछ बीमार भी। मैं मुनिया बूआ से कहूंगी कि उसे कुछ दवा-गोली दें।" बहुत ही सहृदयता और सहानुभूति के साथ झुनिया ने कहा। "माँ कुछ अनाज कल्लू की चमारी को देना चाहती थी बाबा ! लेकिन सुबह-ही-सुबह का वक्त था, सिल्ला चुगना शुरू ही किया था, बँटा नहीं था, शाम को भेजेगी माँ।"

दातादीन की आँखों में आँसू आगये। अपने मोटे कुर्ते के एक छोर से उन्हें पोंछ कर बोला,—"फिर तो वह सिल्ला भी नहीं चुग सकी होगी बेटी।"

"नाँ बाबा ! कहाँ चुग सकी ! माँ ने उसके मुँह पर पानी का छींटा दिया, तब तो कहीं होश में आई। कुछ देर बैठी रही फिर। माँ भी उससे बातें करती रही। बस फिर चली गई वापिस बेचारी।"

दातादीन ने एक लम्बी साँस ली, लेकिन उसके दिल में उथल-पुथल मची थी। कल्लू चमार की जिन्दगी दातादीन के ही पास कटी थी, परन्तु जबसे दातादीन के हल, बैल, खेत सब गये तब से कल्लू भी उसके पास से जाता रहा।

कल्लू बीमार था। पिछली रात को ही तो दातादीन कल्लू को देखने गया था। एक उतावलापन-सा दातादीन के चेहरे पर व्याप्त हो गया। रमधनिया को दातादीन के मुख पर आने वाले भावों को पढ़ने में देर न लगी। उसने तुरन्त घास की दो गठरी बँधवा दीं। हल्की दातादीन ने सिर पर उठाली और भारी रमधनिया ने।

मुनिया के सिर पर सिल्लेवाली गठरी थी जिसे वह बिना प्रयास, बिना मेहनत, बिना पकड़े आराम के साथ मस्ती में झूमती हुई लेकर दोनों के बीच में खेतोंखेत बाट-बाट चल रही थी। रोटियों का बोइया, इँढी, छाछ की लुटिया और पानी का करवा उसकी बगल में थे।

झुनिया की दादी दूर से इन्हें आता देखती, तो हर्ष से खिल उठती थी। उसकी बूढ़ी हड्डियों में भी कुछ जान-सी पड़ जाती थी, चर्खे का चक्कर जोर से घूमने लगता और उसके सूत का तार

तेजी के साथ पिंडिया पर बल खा-खा कर लिटपने लगता था,—यह सब स्वाभाविक ही था,—वह करती नहीं थी कुछ विशेष ।

तीनों ने घर के अहाते में घुसकर अपनी-अपनी गठरियाँ जमीन पर गिरा दीं । इसी समय ढोरी[1] भी आगयी और दातादीन की गाय तथा उसका बछड़ा मुँह उठाये घर के आहते में घुस आये । घास की गठिया की खूंट से निकले दो चार तूड़ों में मुँह मार कर गाय आगे बढ़ी तो झुनिया ने उन्हें सँभाल कर खूंटे से बाँध दिया और फिर हरी-हरी घास भी डाल दी उनकी खोर में। झुनिया ने फिर प्यार से बछड़े के शरीर पर हाथ फेरा और गाय की थूथड़ी को भी अपनी गोद में लेकर सहलाया ।

रमधनिया घर के काम काज में लग गई। बहुत काम था उसे,—घर का सारे दिन का काम इसी समय करना होता था ।

लेकिन दातादीन टुलमुलाता-टुलमुलाता घर के आहते से बाहर निकला और सीधा दबे पाँव कल्लू चमार के घर की ओर होलिया ।

कल्लू बीमार था, खाट से लग गया था। आँखें उसकी गढ़ों में धँस गई थीं । दातादीन चौधरी पर उसकी नजर गई तो उसने उठने का प्रयास किया लेकिन वह उठ न सका, बोल न सका । कल्लू की चमारी कल्लू की खाट की पट्टी से लगी बैठी थी, रो रही थी ।

आज तीन दिन से कल्लू की चमारी भूखी थी । कल्लू के बीमार हो जाने से न तो पिछली फसल में ही वह कुछ काम कर सका और अब सिल्लों के दिनों में भी उसकी चमारी कुछ न कर पाती थी । जब

---

१. गाँव के वह जानवर जो बैलों के अतिरिक्त होते हैं [गाय, भैंस और इनके लवारे (बच्चे)] प्रातःकाल ग्वालों के साथ चरागाहों में चरने के लिए चले जाते हैं । इससे इनका घूमना भी हो जाता है और जंगल में इधर-उधर कुछ घास इत्यादि चरकर (खाकर) भी यह अपना कुछ पेट भर लेते हैं। यही जानवरों का समूह ढोरी कहलाता है। यही ढोरी सवेरे जंगल को जाती है और संध्या को गाँव लौट आती है ।

घर में एक दाना भी न था तो वह किसी तरह आज सिल्ला चुगने गई भी तो'''बेहोश होकर गिर पड़ी बेचारी।

दातादीन ने अपनी धोती की फेंट खोली और उसमें बँधी दो रोटियाँ निकाल कर कल्लू की चमारी से बोला,—"ले, इन्हें खाकर पानी पीले चमारी!"

चमारी ने एक बार कल्लू के मुख पर देखा, फिर दातादीन चौधरी की ओर और फिर चुपके से वह जौ-चने की दो मिस्सी रोटियाँ अपने हाथ में ले लीं। दातादीन की ही तो रोटियाँ खाई थीं इन प्राणियों ने जीवन भर। फिर संकोच कैसा?

दातादीन ने जो रोटियाँ दी थीं वह वही थीं जो झुनिया उसके लिए सुबह बासी रोटी के समय खाने को ले गई थी। दातादीन ने उसी समय इन्हें चमारी के ही लिए अपनी धोती की फेंट में बाँध लिया था।

दातादीन ने एक बार कल्लू की ओर फिर देखा। उसे लगा मानो उसमें प्राण नहीं थे। अन्तिम श्वाँस चल रहे थे। खड़े-खड़े दातादीन की आँखों में आँसू भर आये। कल्लू ने आज पहली बार दातादीन की आँखों में आँसू भरे देखे,—तब भी नहीं जब चन्दू जेल गया था।

दातादीन बोला फिर एक शब्द नहीं। चुपचाप कल्लू की झोंपड़ी से बाहर निकल आया। उसके पैर लड़खड़ाये से जा रहे थे। वह धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़रहा था कि इतने में उसे चमारी के रोने की आवाज सुनाई दी।

दातादीन के पैर रुक गये,— वह समझ गया कल्लू चल बसा,— उसने यह बेरहम दुनियाँ छोड़ दी।

दातादीन ने घर जाकर कहा,—"कल्लू मर गया चन्दू की माँ।"

"कल्लू चमार? हमारा चमार।" एकदम धक्क-सी रह कर झुनिया की दादी की जबान से निकला। उसके हाथ से पूनी छुट पड़ी, चर्खा रुक गया।

झुनिया अवाक खड़ी रहगई, पत्थर की पुतली के समान।

रमधनिया की रोटी तवे पर ही जल-भुनकर राख हो गई, हाथ की लोई हाथ से छूट पड़ी। उसकी आँखों के सामने कल्लू और कल्लू की बीमारी की शक्लें आकर खड़ी हो गईं।

कल्लू की चमारी शुरू से ही बड़ा प्यार करती थी रमधनिया को। कभी-कभी घंटों बैठ कर उससे दुख-दर्द की बातें कर जाया करती थी उससे। रमधनिया भी उसे गाँव की एक नेक औरत समझती थी,—प्यार करती थी।

"बहू! कल्लू के घर में उसके कफन के लिए भी कपड़ा नहीं है।" दातादीन ने लड़खड़ाती सी जबान से कहा।

और रमधनिया को देर न लगी जब उसने कोठे में जाकर वह बुकचा[1] खोल लिया जिसमें वह रमधनिया की शादी के कपड़े जुटा रही थी। एक थान लट्ठराज का अभी परसों ही उसने झुनिया के ओढ़नों के लिए मोल लिया था; वही थान उसने लाकर दातादीन के हाथों में दे दिया।

दातादीन ने थान हाथ में लेकर एक बार बहू की ओर देखा और फिर एक आह भर कर वह मौन-का-मौन खड़ा रह गया—त्याग और तपस्या की देवी उसके सामने खड़ी थी। दातादीन का मस्तक झुक गया।

---

१. बुकचा—स्त्रियों के कपड़े रखने का वह बड़ा थैला होता है जो लड़कियाँ शादी के समय साथ ले जाती हैं और उसमें उनके अपने पहनने के कपड़े होते हैं। बुकचा उन दिनों अधिक प्रयोग में आता था जब लोहे के ट्रङ्कों का रिवाज कम था। अब तो गाँवों में भी ट्रङ्कों का प्रचलन होगया है परन्तु फिर भी छोटी जातियों में अभी-भी बुकचा रखने की प्रथा है।

दातादीन ने चुपचाप उस थान से कफन फाड़ लिया और वह उल्टे ही पैरों झपट कर कल्लू की झोंपड़ी पर पहुँचा।

आस पास की झोंपड़ियों के चमार वहाँ इकट्ठा थे। कल्लू के कफन के लिए कानाफूसी चल रही थी। कल्लू का नाते-रिश्ते में चाचा, भाई, भतीजे कई लगते थे, लेकिन कफन का पैसा कौन खर्च करे—कौन उसे जलाने का खर्च दे।

दातादीन को देखकर सब इधर-उधर हो गये। कफन दातादीन ने उन लोगों को देकर अर्थी तय्यार करने के लिए कहा।

कल्लू चमार की अर्थी उठी और दातादीन ने उसे कंधा दिया।

दातादीन का साथी इस दुनियाँ से चल बसा,—उसकी मिट्टी को श्मशान तक पहुँचाना था,—और दातादीन कंधा न देता,—यह दातादीन की आत्मा ने गवारा नहीं किया।

× × × ×

पुराने पत्ते गिरते जारहे थे। दातादीन के साथी धीरे-धीरे कम होने लगे। आज कल्लू भी चला गया। छूट गया बेचारा जिन्दगी की मुसीबत से,—दातादीन ने संतोष की साँस ली।

"कल्लू भी भला आदमी था बेचारा।" झुनिया की दादी ने दातादीन की खाट के पास पीढ़े पर बैठते हुए कहा। "लेकिन धोखा दे गया चमारी को।"

दातादीन मुस्करा दिया झुनिया की दादी की बात सुनकर और फिर अपनी बुढ़िया के पिचके सूखे गालों पर दृष्टि डाल कर बोला,—"लाचारी थी यह तो चन्दू की माँ! उसका बस जो नहीं था मौत पर। नहीं तो मौत को जिन्दगी बना कर छोड़ता कल्लू। कितना प्यार करता था वह अपनी चमारी को?" इतना कहते-कहते दातादीन के सामने अपनी और कल्लू की जवानी के दिन आगये। उसे चन्दू की माँ के पिचके-पिचके गालों पर जवानी का यौवन छितराया हुआ दिखलाई दिया, वही यौवन जिसकी हर बाँकी थिरकन पर दातादीन

की हृदय-वीणा के तार झंकृत हो उठते थे,—बज उठते थे और मन मयूर बनकर नाँचने लगता था।

"लाचारी को ही धोखा कहते हैं।" झुनिया की दादी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, परन्तु तुरन्त ही बुढ़िया के मुख पर मुस्कान खेल उठी और वह हँसकर बोली,—"लेकिन मैं तुझे पहले नहीं मरने दूँगी,—यह याद रखना।"

दातादीन जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा।

दातदीन के जीवन-प्रवाह में न जाने कितने प्रकार की लहरें आईं और चली गईं परन्तु उसका प्रवाह अभी चल रहा था। गति उसकी मन्थर अवश्य होगई थी परन्तु उसमें रस था, शक्ति थी, उत्साह था इच्छाएँ थीं और था सहयोग प्रकृति की प्रगति में अपने जीवन और जीवन की संचित निधियों का बलिदान देने का, त्याग करने का।

: ११ :

रमधनिया के जीवन में चन्दू आया जरूर, लेकिन दोनों की जिन्दगी के रास्ते अलग-अलग निकले। फिर भी क्या हुआ ? रमधनिया एक भारतीय नारी थी और शादी की मुहर उसके ऊपर चन्दू के साथ लग चुकी थी, समाज कहता था कि उसकी जिन्दगी उस डाकू के साथ नत्थी की जा चुकी थी, लिखी जा चुकी थी भगवान् के बही खाते में। उसका यह फर्ज था कि वह जिन्दगी भर उस नालायक पति देवता की पूजा करे, उसके चरणों में मस्तक टेके, चरण-चेरी बनकर रहे, इसी में उसकी गति थी, मोक्ष था—धर्म यही सब कहता था।

और धर्मभीरु रमधनिया अपने उस निष्ठुर पति की निर्दयता के प्रति जागरूक होकर भी उसे छोड़ नहीं सकती थी। चन्दू के सम्बन्ध ने उसे केवल चन्दू ही नहीं दिया था—उसने दिया था दातादीन, उसने दी थी चन्दू की मां और उससे मिली थी उसे झुनिया; वह दातादीन जो अपना सर्वस्व खोकर भी एक इन्सान था और अपने इरादों का मजबूत इन्सान था। वह चन्दू की माँ, जिसने रमधनिया को सोने की डली के समान खरीदा, जहर की पोटली के समान ठुकराया और फिर दिल का टुकड़ा बनाकर सीने से लगाया था। वह झुनिया, जो आज रमधनिया की जिन्दगी की एक मात्र सुनहली किरण थी, बुढ़ापे के स्वप्नों की सुन्दर चितेरी। वही चितेरी थी झुनिया जिसके आंखों के सामने रहने पर रमधनिया कभी काम करने में थकती ही

नहीं थी; एक उत्साह थी वह जीवन की।

आज धानों का ढेर लगा हुआ था रमधनिया के घर पर। कई मन धान रमधनिया ने खोट कर फेंक दिये। रमधनिया ओखली पर बैठी धान सँवारती और झुनिया रमधनिया के सामने खड़ी ऊपर से मूसल पकड़ कर चोट लगाने में साथ देती थी।

रमधनिया गाँव में सबसे अच्छा धान खोटती थी,-क्या मजाल जो एक भी चावल टूट जाय। सारा दिन रमधनिया धान खोटती रही। दोपहर बाद मुनिया इस ओर आई तो रमधनिया दो घड़ी दम लेने को मुनिया के पास कोठे के सामने जाकर बैठ गई।

झुनिया फुदक कर इसी समय दादी अम्मा के चर्खे के सामने जा बैठी और प्यार से चरखे की हथली रोक कर बोली,— "तुम्हारा हाथ थक गया होगा दादी माँ! अब कुछ देर तक बातें ही कर लें।"

"किससे बातें कर लूं बेटी ?" दादी माँ चरखा रुक जाने पर प्यार से झुनिया के सलौने मुख को निहार कर कहती।

"अपनी पोती झुनिया से ही कर लो, दादी मां! क्या तुम्हारी झुनिया बात करने लायक भी नहीं।" और इतना कहकर वह प्यार में दादी मां से लिपट जाती एक अबोध बेल-वल्लरी के समान, मानो एक सूखे ठूंठ का सहारा पकड़ लिया हो बेल ने।

उधर इन दादी पोती को देखकर रमधनिया झुनिया से कहती— "ननद जी! देखा दादी पोती का प्यार!"

मुनिया देखकर मुसकराई और झुनिया के सौंदर्य-पूर्ण यौवन पर बिछा देती अपने नेत्रों को। फिर प्यार में उतावली होकर कहती,— "बड़ी ही नटखट होती जा रही है मेरी झुन्नो!" और तुरन्त उसका मन मुसा-सा हो जाता। वह कुछ सोचने लगती।

मुनिया सोचती और रमधनिया ताड़ जाती कि बस मुनिया अपनी जिन्दगी की बर्बाद कहानी का सिंहावलोकन कर रही थी। रमधनिया ऐसा बहुत कम करती थी। कल्पना का उसके पास समय ही

नहीं था। उसने तो बस कुछ करते जाना ही सीखा था।

रमधनिया अपने गत जीवन को बिलकुल भूल चुकी थी, ऐसी बात नहीं थी। चन्दू के जेल चले जाने की बातें उसके दिल पर नक्श थीं। पूरे दस वर्ष और उनका एक-एक दिन उसके दिल की डायरी में नोट था। इस दस साल की डायरी का एक-एक पन्ना उसने बड़ी सावधानी से फाड़ा था, बड़ी उत्सुकता से फाड़ा था, बड़ी आशा-आकांक्षाओं से फाड़ा था,—क्योंकि वह जानती थी कि आदमी बदलता है। चन्दू की मां के जीवन का परिवर्तन उसके सामने था, और उस पर थी रमधनिया के पराक्रम की छाप।

चन्दू के जेल से छूटने की अवधि भी धीरे-धीरे किनारे से आ लगी। रमधनिया की ही भाँति चन्दू की मां कभी कुछ कहती नहीं थी इसके विषय में, परन्तु दिन एक-एक उसने भी न जाने कितने-कितने वर्षों के समान काटे थे।

बस, एक दातादीन ऐसा था कि जिसके दिल में जलन थी चन्दू के प्रति और कुछ नफरत भी। क्या पता वह भी चन्दू के सामने आने पर काफूर हो जाती। लेकिन उसने कभी बात नहीं की चन्दू के विषय में। कभी चन्दू की माँ ने बात चलाने का भी प्रयत्न किया तो दातादीन ने उसे रोक दिया। दातादीन के दिल में एक दर्द-सा उठने लगता था चन्दू का नाम सामने आते ही। उसे क्रोध भी आजाता था कभी-कभी।

वह सोचता था कि न जाने उसके किस जन्म के दुश्मन ने उसके घर में जन्म लिया था। दातादीन का मान, उसकी मर्यादा, उसके खान्दान की इज्जत,—सब मिट्टी में मिला दी चन्दू ने।

कभी-कभी दातादीन सोचता ही रहता बहुत देर तक साहूकार के बेटे और चन्दू को सामने खड़ा करके अपने ख्वाब की दुनिया में। दोनों ने ही दातादीन से कर्ज वसूल किया और बाद में उसकी इज्जत पर भी हाथ साफ किया।

उनका कर्ज था,—वह लेते। इस जन्म का भी लेते और पिछले जन्म का भी,—लेकिन उन्हें दातादीन की इज्जत के साथ खेल खेलने का अधिकार नहीं था।

और यह विचार मन में आते ही दातादीन तिलमिला उठता। बुढ़ापे में भी उसकी नसें फड़कने लगतीं और उसे लगता कि मानो उसका सर्वस्व खो गया,—वह खोने के ही लिए इस दुनिया में आया था।

चन्दू के जेल से छूटने के दिन करीब आते जा रहे थे परन्तु दातादीन के मन में कोई उमंग नहीं थी, कोई उत्साह नहीं था।

रात को जब दातादीन खाना खाने बैठा और थाली में बाजरे की खिचड़ी, गर्म-गर्म, लाकर झुनिया ने सामने रखी तो झुनिया की दादी भी पास को खिसक आई।

अपने बूढ़े दाँत-टूटे मुँह का मुस्कराता हुआ आला-सा खोलकर साहस बटोरते हुए बोली,—"अब तो तुम्हारा नालायक चन्दू भी आने वाला है।"

दातादीन कुछ न बोला। सुना,—और चुप रह गया। गर्दन नीची ही किये खिचड़ी खाता रहा,—मानो कुछ सुना ही नहीं उसके कानों ने।

चन्दू की मां ने फिर कहा,—"सिर्फ पच्चीस दिन और रह गये हैं चन्दू के....."

"चन्दू न आये तो अच्छा है चन्दू की मां! मुझे घबराहट हो रही है यह जानकर कि वह आरहा है। मैं डरता हूँ कि कहीं वह आकर मेरी इस दस साल की कमाई हुई शान्ति को न खोदे,—आज सिर्फ यही मेरी जिन्दगी का आखरी सहारा है।" और इतना कहकर दातादीन ने एक लम्बी गहरी साँस ली। एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी उसके जीवन में, एक विचित्र परेशानी-सी।

झुनिया ने दादी बाबा की यह बातें चुपके से सुनीं तो वह अपने को न रोक सकी। मां के पास चूल्हे के सामने बैठकर चूल्हे में जलते

हुए झम्बे [1] को आगे सरकाकर धीरे से बोली,—"मां, दादी कह रही हैं कि बापू बीस-पच्चीस दिन में छूट कर आ जायँगे। क्या सच है यह ?"

"हां सच है बेटी !" हाथ की रोटी हाथ में ही रोककर रमधनिया ने कहा।

झुनिया को कुछ अजीब-सा लगा। उसने दादी, बाबा और अपनी मां के चेहरों पर देखा तो वह कुछ भी अन्दाज न लगा सकी। एक पीड़ा थी वहां और व्यापक पीड़ा थी जिसके आंचल में पुत्र-स्नेह और पति-भक्ति ने मुँह छिपाया हुआ था,—परन्तु था सब उत्साह विहीन।

झुनिया कोई और प्रश्न आगे न पूछसकी। वहाँ से उठकर वह सीधी अपनी गाय के पास चली गई और उसका मुँह अपनी गोद में लेकर उसकी चारेकी नांद[2] पर बैठ गई। उस पर प्यार का हाथ फेरती रही और सोचती रही अपने मन में अपने बाप के प्रति,—कैसा आदमी है वह भी। दस साल के बाद जेल से आ रहा था और फिर भी उससे मिलने का, उसका मुँह देखने का, उसे प्यार करने का, कोई उत्साह नहीं,—उसके माँ बाप में नहीं, उसकी औरत में नहीं और उसकी बेटी-वह तो मानो कुछ जानती ही नहीं उसे। वह तो केवल यही जानती थी कि वह चन्दू डकैत की लड़की थी, दातादीन मजदूर की पोती थी,

---

१. अरहर के पेड़ उनकी फलियाँ तोड़कर सुखा लिये जाते हैं और फिर उपलों के साथ या अकेले भी चूल्हे में खाना बनाने के लिये काम में लाये जाते हैं।

२. गावों में एकाध जानवर के चारा खाने के लिए पूरी खोर न बनाकर एक मिट्टी की नाँद (गोल मिट्टी का बड़े तसले जैसा बर्त्तन) गाड़ दी जाती है। यह विशेष रूप से दूध देनेवाले जानवरों के लिए ही गाड़ी जाती है, जिससे कि उसके चारे में दाना मिलाया जा सके और उसमें मिट्टी न मिले।

और आँखों का तारा थी रमधनिया की जिसने अपने जीवन का सर्वस्व खोकर केवल उसे ही पाया था।

"इतने रूठ गये अपने चन्दू से?" चन्दू की मां ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"मुझे रूठने लायक भी नहीं छोड़ा चन्दू ने,—चन्दू की मां! भेड़-बकरी की जिन्दगी काट रहा हूँ यहां इस सड़े हुए जोहड़ के किनारे गांव से बाहर पड़ा,—बस इससे आगे शमशान है।" इतना कहते-कहते दातादीन का हाथ थाली की खिचड़ी में ही मानो धँस कर रह गया; वह जाम-सा हो गया। उसने फिर चन्दू की माँ की ओर देखकर कहा,— 'चन्दू की मां, तेरा कहना तो कभी मैंने गिराया नहीं जिन्दगी में। अब भी जो तू कहे मैं करने को तय्यार हूँ।

"तू सच जान, मैं तेरे कहने से एक इन्च भी इधर-उधर जाने वाला नहीं।"

दातादीन की आवाज इस समय भारी हो रही थी,—चन्दू की माँ ने महसूस किया कि मानो कोई उसके गले को दबा रहा था।

झुनिया के कान यहीं थे, बड़े ध्यान से सुन रही थी वह इन दोनों की बातें।

"तो, एक बार मेरा कहना और मानकर अपने चन्दू को लिवा लाना जेल से,—कहीं ऐसा न हो कि....."

"वह शर्म और हया का पुतला गांव में ही न आये, कहीं कुए खत्ती में कूद कर प्राण दे दे.....यह सब तेरी खाम-खयाली है चन्दू की मां! वह नालायक जेल से छूटकर सीधा यहीं आयेगा। मुझे लगता है कि मैंने उसका पूरा कर्ज अभी अदा नहीं किया।" दातादीन ने कहा। "लेकिन मैं करूँगा वही चन्दू की माँ जो तू कहेगी। चन्दू के बारे में मैंने आज तक कभी कुछ नहीं कहा फिर अब आखरी दिनों में कुछ कहकर मैं भला तेरा भी दिल क्यों तोड़ दूँ।..... रही मेरे दिल की बात-सो वह काफी मजबूत है। औरतों जैसा दिल नहीं है दाता-

दीन का।"

दातादीन के यह गर्वपूर्ण शब्द यदि कोई समय और होता तो शायद चन्दू की मां एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त न करती लेकिन इस समय वह कुछ न बोली। अमृत के घूंट के समान पी लिए उसने और एक आशा भरी दृष्टि से दातादीन के मुँह पर देखकर बोली,—तो सचमुच तुम जाओगे अपने चन्दू को जेल पर लेने।"

"जरूर जाऊँगा चन्दू की माँ! तू कहती है तो मैं जरूर जाऊगा!" दातादीर में भारी स्वर ने में कहा।

चन्दू की माँ ने कौठे के सामने कानस पर रखे दिये की टिम-टिमाती हुई रोशनी में दातादीन की लम्बी-लम्बी बेतरह बिखरी मूँछ के बालों पर उसकी आँखों से अनायास ही चू जाने वाली आंसुओं को लटकते और दमकते हुए देखा। उसने देखा कि उन आँसुओं की एक-एक बूँद में चन्दू की शक्ल उतर आई थी।

इन आंसुओं की बूँदों में चन्दू की मां ने अपने चन्दू की पैदा होने से जेल जाने तक की सारी जिन्दगी की तस्वीरें खिंची हुई पाईं। उसने ह्याउ-ह्याउ करता चन्दू देखा, उसने अपने पहले घर के आँगन में ठुमक-ठुमक कर घूमता चन्दू देखा, उसने घर की चौखट से बाहर जाता हुआ चन्दू देखा, उसने तख्ती बस्ता लेकर स्कूल जाता हुआ चन्दू देखा, उसने दातादीन के हाथों पिटता और अपने आंचल में छिपता हुआ चन्दू देखा, उसने घर से भागकर छै दिन बाद लौटता हुआ चन्दू देखा, उसने रमला और कन्नू के साथ बीड़ी सुट्याता हुआ चन्दू देखा, उसने पुलिस द्वारा पकड़ा जाता हुआ चन्दू देखा, उसने जमानत पर छूटकर आता हुआ देखा, बस फिर उसने चन्दू को नहीं देखा,—चन्दू को फिर देखने की ही तो लालसा इस समय माँ के हृदय की पीड़ा बनी हुई थी।

झुनिया ने यह दृश्य आज पहली बार जिन्दगी में देखा था। वह बेचैन थी कुछ जानने के लिए। गाय की नांद से उतर कर धीरे-धीरे अपनी माँ के पास गई तो वह देखती ही रह गई।

रमधनिया का चूल्हा बुझ चुका था। तवे की रोटी तवे पर ही पड़ी-पड़ी सिकी, कुछ जली और सूखकर खङ्गर सी बन गई थी। परात का चून ज्यों-का-त्यों रखा था। हाथ की लोई हाथ से छूट गई थी। रमधनिया रो रही थी।

झुनिया कुछ पूछना चाहती थी परन्तु मां को रोती देखकर उसका हृदय उमड़ आया। अब इतनी अनजान नहीं थी वह। अपनी मां की दिक्कतों और परेशानियों का उसे ज्ञान था। उसने माँ का बेटियो-चित्त प्यार से—आदर से—हाथ पकड़ कर कहा,—"मां, तू यहां से उठ जा और पीढ़े पर बैठ। आज धान खोटते-खोटते बहुत थक गई है। मैं अभी सब रोटियां सेक देती हूँ।"

और सचमुच उसने अपनी मां को गोद-सी में भर कर एक ओर उठा लिया। मां की चार हड्डियों को फूल की तरह उठाकर पीढ़े के ऊपर रख दिया झुनिया ने और चूल्हे में झम्बे सरका कर आग जला ली।

दातादीन बूढ़ा जरूर हो गया था लेकिन उसकी नजरें चारों ओर काम करती थीं। घर में घटनेवाली छोटी-से-छोटी घटना पर भी उस की पूरी नजर रहती थी।

रमधनिया का भारी मन और रोना उसने देखा और अपने को सँभाल कर बोला,—"बहू! रो मत तू! तेरा भाग्य दातादीन नहीं बदल सकता,—वह लाचार है। लेकिन उस पाजी को जेल से लाकर एक बार मैं फिर तुम लोगों के हवाले कर दूँगा। अगर सँभाल सको तो सँभाल लेना, तुम सास-बहू मिलकर,—लेकिन मुझे कोई उम्मीद नहीं, आशा नहीं। आदमी पर सोहबत का असर होता है और उसकी सोह-बत खराब हो चुकी है।

"जब वह जेल गया था तो सिर्फ रमला और कन्नू की ही सोहबत मिली थी उसे। लेकिन अब तो डाकुओं के सरकारी गढ़ में से आ रहा है वह। भगवान् ही जाने क्या गुल खिलाता है आकर?"

दातादीन की बात सबने सुनी और सब मौन हो गये। सांप सूँघ गया सबको। चन्दू के लक्षण सुधर गये होंगे इस पर किसी का विश्वास नहीं जमता था।

वह दिन भी आ गया जब जेल से चन्दू छूटने वाला था। रमधनिया ने तड़के-ही-तड़के गेहूँ चने की, पानी के हाथ की रोटियाँ, नमक डाल कर सेकीं और उनके बीच में रख दिया कैरी का अचार। अचार की चार फाँक रमधनिया ने मुनिया के घर से रात को ही झुनिया को भेजकर मँगाली थी। एक गुड़की डली भी रोटियों के साथ नतने में बाँधदी, अलग से, कहीं पिघल न जाय।

और दातादीन भी भोर के तड़के उठा और कुर्ता गले में डाल, चादर कंधे पर रख, लाठी हाथ में लेली। झुनिया ने नतने में बांधी रोटियाँ दातादीन के हाथ में लाकर दीं और वह सवेरे-ही-सवेरे खरामा-खरामा पास वाले रेल के स्टेशन की ओर होलिया।

दातादीन का गांव रेल के स्टेशन से चार कोस के फ़ासले पर था। रेल सुबह सात बजे छूटती थी परन्तु वह तो स्टेशन पर साढ़े पाँच बजे ही पहुँच गया।

रेल आई और उस पर सवार हो गया अपने जिले के शहर का टिकट लेकर। शहर वह पहले भी कई बार गया था लेकिन आज उसके पैर न जाने कैसे हो रहे थे। उसे शर्म सी महसूस हो रही थी आगे बढ़ते। वह स्टेशन पर रेल से उतर कर तीसरे दर्जे के मुसाफिर खाने के दरवाजे से बाहर निकल कर तांगों के अड्डों पर पहुंच गया। तांगेवाले विभिन्न स्थानों पर चलने की आवाजें लगा रहे थे परन्तु जेल की ओर जाने वाला एक भी ताँगा नहीं था। जेल थी भी बहुत दूर,—शहर से चार मील दूर जंगल में।

दातादीन पैदल ही जेल की सड़क पर बढ़ चला। ताँगे के लिए उसके पास फिजूल पैसा नहीं था। जेल पर पहुँचा तो पता चला कि कैदी शाम को चार बजे छूटेंगे। वह दरवाजे से आधा फर्लांग दूर ही

एक शीशम के पेड़ के नीचे बैठ गया,—बैठ नहीं गया, लेट गया वह अपनी चादर का सिरहना बना कर सड़क के एक किनारे पर,—थक गया था वह चलता-चलता।

दातादीन यहाँ जेल पर चन्दू को लेने आया था परन्तु उसका शरीर एक मशीन की तरह काम कर रहा था,—वह चालित था चन्दू की माँ की मनोकामना द्वारा, रमधनिया की उत्सुकता द्वारा और झुनिया,—उसने तो बाबा से कोई बात नहीं की इस विषय में।

और सभी तरह की बातें करती थी अब झुनिया दातादीन से,—दातादीन के दुख-दर्द की बात, दातादीन के बचपन, जवानी और बुढ़ापे की बात, दातादीन की हिम्मत और उसके साहस की बात, दातादीन के यश और गौरव की बात, परन्तु अपने बापू की चर्चा उसने कभी नहीं चलाई दातादीन से।

चन्दू के विषय में अब उसे सभी कुछ पता था,—वह सब जान गई थी। अपनी माँ को पिटती देखा था झुनिया ने उस क्रूर व्यक्ति के हाथों,—वह घटना वह भूल नहीं सकती थी। उसकी दादी माँ को लात मार कर गिरा देना भी झुनिया के जीवन की सच्ची घटना थी,—जो देखी थी उसने, सुनी नहीं। रही दातादीन की बात,—सो झुनिया तो सचमुच दातादीन को ही अपना बाप मानती थी और उसे गर्व था अपने बूढ़े बाबा पर। जहाँ चन्दू की बेटी अपने को कहते उसकी गर्दन लज्जा से झुक जाती थी वहाँ दातादीन की पोती होने का उसे गर्व था और उसकी माँ रमधनिया,—उसकी तो वह पूजा करती थी अपने मन-मन्दिर की देवी के समान।

दातादीन का बदन थक कर चूर-चूर हो गया था,—दस कोस पैदल चलने और रेल के सफर से। थोड़ी देर इसी तरह लेटा रहा तो कुछ शरीर में जान आई। हवा भी लगी वहाँ ठंडी-ठंडी। दातादीन ने दाँई ओर देखा तो एक छोटा सा बगीचा लगा था वहाँ। बगीचे के बीच

में एक ढेंकली [1] थी। दातादीन धीरे-धीरे उधर बढ़ कर ढेंकलीके पास पहुँच गया।

माली के लड़के ने सहानुभूति से पूछा,—"पानी पीओगे बाबा !" और उसने पानी पिलाया दातादीन को,—हाथ पैर भी धुलाये। दातादीन नतने में बँधी रोटियाँ लेकर खाने बैठा, तो खाई नहीं गईं उससे। हाथ का टुकडा हाथ में और मुँह का मुँह में फँस गया।

दातादीन की दशा देख कर माली का लड़का बोला,—"बाबा, तुम्हारा कोई आदमी आज छूटने वाला है क्या जेल से ?"

"हाँ बेटा !" भारी आवाज से दातादीन ने उत्तर दिया।

दातादीन रोटी न खा सका। उसने ज्यों-की-त्यों वह रोटियाँ नतने में बाँधीं और चादर में लपेट कर कंधे पर डाल लीं। फिर चल दिया जेल के दरवाजे की ओर।

एक उत्सुकता अनजान में न जाने क्यों पनपती जा रही थी दातादीन के मजबूत दिल में,—उसे दिखलाई दिया कि चन्दू उसकी आँखों के सामने खड़ा था। जेल का दरवाजा खुला और चन्दू वाकई उसके सामने था,—उसका स्वप्न साकार हुआ।

न लटा, न घटा; सेहत वैसी ही जैसी जेल जाते समय थी।

---

१. माली लोग अपने बगीचे या खेत को पानी देने के लिए छोटी कुइयों में ढेंकली कुइया के एक किनारे पर मिट्टी का कच्चा ओटा (छोटी लगभग १० फिट ऊँची और छै फिट चौड़ी दीवार) बना कर उसमें एक लम्बा पोल लगा लेते हैं। ठीक उसी प्रकार का जैसा कि आजकल सड़कों पर आने वाली चुङ्गी की चौकियों पर मोटरों को रोकने के लिए होता है। उसीके एक सिरे पर पानी का डोल रस्सी द्वारा बाँध दिया जाता है और दूसरे सिरे पर एक भारी पत्थर। बस इसी के बैलेन्स और झटके से इस डोल द्वारा कुइया से पानी निकाल कर सिंचाई की जाती है।

चेहरे पर मुस्कराहट थी, वह दातादीन को देखकर कुछ मलिन सी हो गयीं, फीकी पड़ गई। चन्दू को विश्वास नहीं था कि दातादीन जेल पर उसे लेने आयगा।

चन्दू नाटक-सा खेल गया आज फिर दातादीन के साथ; दहाड़ मार कर रो पड़ा,—आंसू भी फूट-फूट कर गिर रहे थे उसकी आँखों से। दातादीन पिघल गया,—मोम बन गया उसका दस वर्ष से कूट-कूट कर मजबूत बनाया हुआ दिल। बेटे के प्यार ने जोर पकड़ा और वह उभर कर दातादीन के हृदय पर छा गया, मन पर छा गया और नेत्रों में स्नेह बन कर छलछला आया।

चन्दू आगे बढ़ा तो दातादीन के पैर आपसे आप उस ओर खिंच गये, उसका बूढ़ा शरीर उठ चला उस ओर और हाथ फैल गये,—भर लिया उन्होंने अपने बीच चन्दू को,—अपने हृदय की बिछड़ी हुई ममता को। शब्द दातादीन की जबान पर एक न आया।

: १२ :

चन्दू की माँ आँखें पसारे बैठी थी अपने चन्दू के लिए । रोटी आज वह तमाम दिन न खा सकी । चरखा कातने में भी मन नहीं था। रमधनिया भी आज जङ्गल को नहीं गई । झुनिया और रमधनिया ने मिलकर पूरा कोठा, और छप्पर लीपे थे और बाहर का चौक भी ।

यह सब स्वागत में था चन्दू के । चन्दू लाख बुरा था लेकिन चन्दू की माँ का वह बेटा था,—वह उस पर आज भी प्राण न्यौछावर कर सकती थी; रमधनिया का वह पति था,—उसके लिए वह देवता था और वह देवता, जो दस वर्ष के लिए उससे रूठ कर जेल चला गया था, आज फिर जसे दर्शन देने के लिए आ रहा था; झुनिया का वह बाप था,--और झुनिया नहीं जानती थी कि उसका उसके प्रति क्या कर्तव्य था । एक उत्साह आज अवश्य था तीनों प्राणियों के मन में । वह प्रतिक्षण चन्दू को साथ लिये दातादीन के आने की प्रतीक्षा में थे ।

रमधनिया ने खाना बनाकर चौका साफ कर दिया और अब वह अपनी सास के ही पास कपास [1] ओटने की चरखी लेकर बैठ गई थी । खाना आज उसने भी नहीं खाया । झुनिया घर लिपवा कर मुनिया बुआ के पास चली गई थी ।

१. कपास रूई की प्रारम्भिक दशा का नाम है, जैसी यह पेड़ से उतर कर आती है । इस दशा में रूइ की पोटली-सी के अन्दर बिलौना बन्द रहता है ।

रमधनिया की नजर दीवार फाँद कर दगड़े में गई तो देखा झुनिया और मुनिया इधर को ही लपकी आरही थीं।

मुनिया भी चन्दू को कम नहीं चाहती थी। मुनिया और चन्दू का घर पास-पास था। उम्र भी करीब-करीब बराबर थी। सिर्फ छै महीनेके आगे पीछे दोनों का जन्म हुआ था। साथ-साथ खेले थे और बड़े हुए थे। परन्तु इस समय तो वह भगवान् से यही मनाती आ रही थी कि किसी तरह दस वर्ष की कठिन जेल-साधना ने चन्दू को बदल दिया हो, उसका रंग-ढंग बदल दिया हो, उसका रहन-सहन बदल दिया हो, उसकी विचार-धारा बदल दी हो, उसे एक समझदार और मेहनती इन्सान बना दिया हो।

मुनिया को आती देख रमधनिया ने पहले ही उसके लिए पीढ़ा बिछा दिया और आने पर पैर भी लगी उसके।

"ताऊ आया नहीं अभी ताई ?" मुनिया ने चन्दू की माँ की ओर मुँह करके पूछा।

"अभी नहीं आया बेटी ! सरकारी काम है। पता नहीं कितनी देर लगती हो।" ताई ने चरखा चलाना बन्द करके जवाब दिया।

"लेकिन अब तो साँझ हो चली।" और वाकई सूर्य देवता अस्ताचल की ओर जाने की इन्तज़ार में थे।

दिन के अवसान का समय था। सूर्य की अंतिम पीली पड़ गईं किरणें जोहड़ के गंदले पानी पर पीला और मटियाला रङ्ग छितरा रही थीं। जोहड़ के किनारे वाले वृक्ष भी, जो दिन भर सूर्य के प्रकाश के नीचे दबे रहे थे, अपनी-अपनी छाया अपनी अङ्क में समेटे थे, अब सूर्य की क्षीण शक्ति को देख कर अपनी छाया का विस्तार करते जा रहे थे। सूर्य के प्रकाश को रोकने के लिए यही इस समय विशाल भूधरों के समान डट कर खड़े थे और इनकी लम्बी-लम्बी काली छाया फ़र्लांगों दूर तक बिछती चली जा रही थी।

दातादीन का घर और उसके पास वाले जोहड़ भी दबते चले जा

रहे थे उस काली छाया में। कुछ देर और,—और सूर्य छिप गया, आसमान की पीलिमा और लालिमा रात्रि के अंधकार में विलीन हो गई।

झुनिया ने कोठे के सामने आले में रखा हुआ सरसों के तेल का दिया टिमका[1] दिया।

चारों प्राणी चन्दू और दातादीन की राह देख रहे थ। शहर से संध्या को आने वाली गाड़ी का समय हो चुका था।

आज से दस वर्ष पूर्व दातादीन ने शहर की अदालत में चन्दू के मुकदमे के लिए कितनी ही पेशियाँ भुगताई थीं। तब भी रोजाना इसी गाड़ी से आना होता था। दातादीन फक्का हो गया था उस मुकदमे के दौरान में। भूखा-प्यासा सुबह से शाम कर देता था,—टुकड़ा रात को ही नसीब होता था घर आकर और घर आकर भी वह हलक से नीचे ठूँस-ठूँस कर ही उतारना होता था किसी तरह।

"अब तो गाड़ी आचुकी होगी स्टेशन पर ताई।" मुनिया बोली।

"आ तो जरूर गई होगी बेटी! तेरा ताऊ जब मुकदमा लड़ने जाता था चन्दू का तो रोजाना दिया जले ही आता था।" चन्दू की माँ ने जवाब दिया।

एक उतावलापन व्याप्त था इस समय सभी के अन्दर। तभी रात्रि के अंधकार को चीरती हुई झुनिया की नौजवान निगाहों ने दातादीन को अपनी लाठी हाथ में लिये दूर गाँव की ओर आने वाली बाट पर आते देखा। वृक्षों के झुरमुट को चीर कर दूर तक रास्ते पर बिछी हुई थी झुनिया की दृष्टि। वह एक दम प्रसन्नता में उछल कर बोल उठी,—"बाबा आ रहे हैं दादी!"

"और चन्दू?" उत्सुकता से कुछ सहमी-सी होकर झुनिया की दादी ने पूछा।

---

१. जला दिया।

"वह भी शायद साथ है।"

चन्द मिनट पश्चात् दातादीन चन्दू को साथ लिए घर के आँगन में घुस आया। चन्दू की माँ 'मेरा लाल' कहकर चन्दू से लिपट गई और सँभाल लिया चन्दू ने भी।

रमधनिया यहाँ से हट कर कोठे की दीवार के पास दीये के नीचे जाकर खड़ी हो गई थी पहले ही।

झुनिया मुनिया से सटी हुई खड़ी यह दृश्य देख रही थी।

शब्द किसी की जबान से कुछ न निकला। केवल नेत्रों की भाषा में ही कुछ कहा-सुना गया और समझा भी नेत्रों की ही भाषा में।

सब को रोते देख कर झुनियाँ भी रुँआसी सी हो गयी,—उसका बाप दस वर्ष बाद उसकी नज़र के सामने आया था। न सही चन्दू की जिन्दगी से उसका कोई सम्बन्ध लेकिन एक छोर तो बँधा था उसके साथ झुनिया का,—वह उसका बाप था,—उसी की लड़की कहकर उसे पुकारा जाता था गाँव-बस्ती में।

गाय और बछड़े ने भी यह दृश्य देखकर न्यारखाना बन्द कर दिया। नवागन्तुक की ओर दृष्टि पसारे देख रहे थे।

चन्दू ने यह नया घर देखा, नया साजो-सामान देखा, नया रहन-सहन देखा,—कुछ चकराया, कुछ भौंचक्का-सा हुआ, लेकिन धीरे-धीरे उसे सब कुछ पता चल गया कि वह अब दो खेत के मालिक, घर और बैठक वाले दातादीन का बेटा नहीं था, वह तो सुबह के तड़के खुरपी हाथ में लेकर घास खोदने जाने वाले मजदूर का बेटा था।

चन्दू को देखने कल्लू की चमारी आई, मुनिया का बाप आया रामू और और भी गाँव के साथी तथा बड़े-बूढ़े आये। सभी ने संतोष जाहिर किया, प्रसन्नता दिखलाई।

कुढ़न भी हुई कुछ लोगों को। साहूकार का बेटा तो आज घर से बाहर नहीं निकला भय के मारे,—किसी ने कह दिया था उससे कि चन्दू उसे जेल से आते ही जान से मारकर दम लेगा। उसके प्राण

सूख रहे थे। जिन-जिन लोगों ने चन्दू के खिलाफ गवाही दी थी अदालत में, उनकी भी दशा कुछ खास अच्छी नहीं थी।

चन्दू के वह साथी जो चन्दू के जेल चले जाने से लावारिस-से हो गये थे, चन्दू का मुँह देख कर उनमें जान पड़ गई,—पुराने सपने नये हो उठे। मूछों पर ताव दिया सबने मिल कर और कसमें खाईं कि इन दस वर्षों में जिस-जिस ने भी उन्हें सताया था, चिढ़ाया था, उससे अब वह जी खोलकर बदला लेंगे,—उसके खेत उजाड़ कर रख देंगे, उसके गाय बैलों को नौ दो ग्यारह करेंगे, उसके पैरों का अनाज गायब होगा, उसके जंगल में लगे बूंगों का भुस निकाल कर बेच डालेंगे, उसके बिटौड़े फोड़ लेंगे, उसके पेड़ काट लायेंगे और आखीर में उसके घर में कूमल फोड़कर भी उसका.....मतलब यह कि उसे पूरा-पूरा मजा चखाया जायगा।

आज इन सबने मिलकर रात को रमला के घेर में चौकड़ी की दावत रखी; जिसमें रमला, कन्नू और चन्दू के स्वागत् का इन्तजाम था। ठर्रा शराब की आठ बोतलें भी मँगाई गई थीं ठेके से।

चन्दू इस दावत का मोह न छोड़ सका। अपने पुराने साथियों के बीच बैठकर सरदारी करने का लालच ही उसकी जिन्दगी थी। वह था भी वाकई सच्चा सरदार इस चौकड़ी का।

पुलिस ने लाख मार लगाई, बदन सुजा दिया मार-मार कर, लेकिन क्या मजाल जो चन्दू के मुँह से किसी भी साथी का नाम निकल गया हो। अपने साथियों की मुसीबत चन्दू, रमला और कन्नू ने अपने ऊपर ली थी और उसे दस साल तक निभाया।

घर से किसी तरह कन्नी काट कर चन्दू रमला के घेर में पहुँच गया। अपने सभी साथियों से छाती लग कर मिला,—शायद उससे ज्यादा स्नेह और प्यार के साथ जिससे कि वह दातादीन और अपनी माँ से मिला था।

यार दोस्तों ने शाबाशी का बौछार की चन्दू पर और चन्दू गर्व

से फूल कर कुप्पा हो गया,—लेकिन अन्दर-ही-अन्दर,—क्यों कि दस साल की जेल-यात्रा ने कुछ संजीदा भी बना दिया था उसे।

"साहूकार के बेटे ने बड़ा भारी जुल्म किया।" एक ने कहा।

"मैंने चौथे ही दिन उसकी भैंस खुलवादी चन्दू!" गर्व के साथ दूसरा बोला, "जोगीपुर के गूजरों[1] को जरा इशारा किया और वह रात को ही खोलकर ले गये।"

"बहुत ठीक किया तुमने।" रमला कड़क कर बोला।

"उस पाजी का सिर तोड़ डालना चाहिए था।" कन्नू ने कहा।

"कर तो हम सब कुछ डालते भय्या! लेकिन सिर पर कोई सँभालने वाला भी तो होता। तुम लोग तो जेल में बैठे थे।" पहला गम्भीरता पूर्वक बोला।

यह सचाई थी,—और इसके सामने सबका सिर झुक गया। चन्दू ने इसे उनकी कमजोरी नहीं माना। वह गम्भीरता पूर्वक बोला,—"चलो ठीक हुआ, जो हुआ, लेकिन अब इस पाजी की जरूर खबर लेनी होगी।"

"जरूर लेनी होगी।" कन्नू कड़क कर बोला।

"जरूर लेंगे," रमला ने कहा।

"हम जो कहोगे सो करेंगे। कहने में देरी होगी, करने में नहीं,—बस यही समझ लेना।" कई ने मिलकर कहा।

और फिर जेल की कहानी छिड़गई। रमला और कन्नू ने चन्दू की जेल की सिरदारी का किस्सा बड़े गर्व के साथ यार लोगों को सुनाया और सभी ने कहकहे लगाकर उनके कारनामों की दाद दी, प्रशंसा की मुक्त कण्ठ से।

शराब का दौर चला और चलता ही गया।

---

१. मेरठ के आस पास के इलाके में गूजर जाति के लोग ही आम तौर पर मवेशियों की चोरी का काम करते हैं।

रमला, चन्दू और कन्नू ने आज जी खोल कर शराब पी, कितने ही दिन की प्यास बुझाई।

दातादीन चन्दू को ले तो आया, लेकिन उसकी तजुरबेकार निगाहें चन्दू की चाल-ढाल का इमतहान लेने पर लगी थीं। वह बराबर इस बात को परखने का प्रयत्न कर रहा था कि क्या वास्तव में चन्दू की आँखों से जो आँसू बह रहे थे उनमें माँ-बाप के प्यार की कुछ गरमाहट थी।

घर की चहारदीवारी से चन्दू किसके इशारे से निकला, दातादीन ने यह भी देखा, और फिर सर्दी की अँधियारी रात में, तमाम बदन दिन भर के सफर और पैदल यात्रा से चूर-चूर हो जाने पर भी, चन्दू का रमला के घेर तक पीछा किया। उनकी बातें भी सुनीं और शराब का दौर चलता भी देखा।

लेकिन दातादीन एक शब्द न बोला। सीधा अपने घर चला आया। थोड़ ही देर में चन्दू भी आ गया।

चन्दू के शराब पीने में यह खूबी थी कि उसे कोई ऊपर से देख कर पहचान नहीं सकता था, और फिर चन्दू की माँ,—उसके पास फुर्सत ही कहाँ थी आज यह पहचान करने की।

दातादीन की इस कदर चुप्पी चन्दू की मां को खल रही थी। रमधनिया समझ रही थी कि अवश्य कुछ दाल में काला है। झुनिया भी दातादीन को चुप देखकर परेशान थी।

रात को सब खाना खाकर सो गये। कोई विशेष बात-चीत किसी की किसी से नहीं हुई।

रमधनिया को आज रातभर नींद नहीं आई। रमधनिया, झुनिया और चन्दू की माँ कोठे के अन्दर सो रहे थे और दातादीन तथा चन्दू कोठे के बाहर एक छप्पर में, जो इसी वर्ष कोठे के सामने डाल लिया था दातादीन ने।

चन्दू खर्राटे से पड़कर सोगया, मस्ती के साथ। जैसे वह कल

सोया था उसी तरह आज सोया,—उसका चिन्ता से कोई सम्बन्ध नहीं था किसी किस्म का।

दातादीन ने सुबह-ही-सुबह उठ कर कुर्ते पर अपनी बंडी पहनी और ऊपर से कन्धे पर गाढ़े की चादर डाल ली। फिर लाठी हाथ में सँभाली और चल दिया सीधा जंगल की ओर अपने हाथ में घास खोदने की खुरपी लेकर।

रमधनिया ने उसी समय उठकर चक्की झोदी[1] और साथ ही भुनिया भी मां की सहायता के लिए पीढ़ा डाल कर पिसवाने बैठ गई।

सवेरा हो गया और दिन निकल आया तो भुनिया की दादी ने भी खाट छोड़ी, लेकिन चन्दू अभी तक सोया ही पड़ा था। सूर्य देवता उदय हुए और उनकी किरणें चन्दू के मुख पर पड़ीं तो कहीं जाकर उसने करवट बदली।

चन्दू आज महमान था, दस वर्ष बाद आया था लेकिन फिर भी भुनिया को चन्दू का यह ढंग देख कर आश्चर्य हुआ। उसने माँ से अकेले में पूछा,—"माँ, बापू इतनी देर तक क्यों सोता है।"

"कल सफर में थक गया होगा बेटी!" रमधनिया ने कहा।

"लेकिन बाबा ने तो दोनों तरफ का सफर किया था माँ!" भुनिया ने फिर प्रश्न किया।

"जवान आदमियों को ज्यादा नींद आती है भुन्नो! तुम्हारे बाबा अब बूढ़े हो चुके है।" रमधनिया ने जवाब दिया।

जवाब सुन लिया भुनिया ने लेकिन उसके मन को तसल्ली नहीं हुई। उसे लगा कि उसकी माँ उससे कुछ छुपाने का प्रयत्न कर रही थी।

बासी रोटी बन चुकी थी। दातादीन की रोटी लेकर रमधनिया घर भुनिया के सुपुर्द कर, जङ्गल को चल दी। चन्दू इस समय भी सो

---

१. झोना गाँव में चक्की चलाना प्रारम्भ करने को कहते हैं।

रहा था और धूप उसकी खाट पर पूरी तरह फैल गई थी।

रमधनिया रात को ही चन्दू की यह दशा देख कर ताड़ गई थी कि वह शराब पीकर आया था। फिर दातादीन की गम्भीरता ने उसे और भी सशंकित कर दिया था। चन्दू से वह भयभीत-सी होती जा रही थी,—उसे विश्वास नहीं था उसपर। इसी लिए वह झुनिया को घर की रखवाली के लिए छोड़ गई थी।

आज उसका विश्वास अपनी सास पर से भी उठता जा रहा था। वह डरती थी कि कहीं वह चन्दू के प्यार में उसकी पाँच वर्ष की मेहनत और तपस्या को नष्ट न कर दे।

उसे झुनिया की शादी करनी थी।

जो सामान उसने झुनिया की शादी के लिए तय्यार किया था चन्दू उस सब के टके खड़े करके एक बार यार दोस्तों की दावत के बीच बैठकर शराब पीने का लुत्फ ले सकता था।

दातादीन आज जंगल गया तो जरूर पर घास खोदने में उसका मन तनिक भी न लगा।

बैठा-बैठा कुछ सोचता रहा।

रमधनिया उसे आती दिखाई दी तो वह सकपका कर उठा और बेतरह कह उठा,—"ताला खुला छोड़ कर चली आई बहू! तू अभी लौट जा नहीं तो न जाने क्या कुछ कर गुजरे वह नालायक।"

दातादीन के यह शब्द सुनकर रमधनिया जड़वत् रह गई। भय उसे भी था इस बात का और इसी लिए वह झुनिया को आज घर पर छोड़ कर आई थी,—साथ ही उसे ताकीद भी कर दी थी अपने लौटने तक कहीं न जाने की।

"झुनिया है घर पर।" रमधनिया ने कहा।

लेकिन दातादीन को लग रहा था कि यह भूल हुई। उसने पिछली रात का सब किस्सा रमधनिया को सुना दिया और यह भी जतला दिया कि बहू आगे से होशियार रहे चन्दू की हरकतों से। साथ ही

चन्दू की माँ को कानों-कान भी किसी बात की खबर नहीं मिलनी चाहिए, यह भी दातादीन ने कहा।

गृहस्थी का जुआ दातादीन और रमधनिया के ही कंधों पर था। दोनों प्राणी किसी तरह झुनिया और चन्दू की माँ को भी अपनी पीठ पर सँभाले जा रहे थे। झुनिया की शादी का भी भार कुछ कम नहीं था। फिर इन सब के ऊपर चड्ढी गाँठने के लिए आपहुँचे थे चन्दू देवता।

चन्दू की रात की हरकत देखकर एक बार तो दातादीन के मन में आया था कि उसे घर में ही न घुसने दे, लेकिन फिर वह न जाने क्या सोचकर चुप हो गया था। रह गया था खून का सा घूँट पीकर। चन्दू की माँ का बूढ़ा कमजोर दिल कहीं टूट न जाय, उसे यही भय था। चन्दू की माँ को दातादीन ने अपने हृदय में स्थान दिया था, उसकी खुशी में अपनी खुशी और उसके रंज में अपना रंज समझा था। फिर दातादीन के बड़प्पन की भी चन्दू की माँ ने कद्र की थी और एक दिन वह रहा था, जब इनका सितारा बुलन्द था, कि चन्दू की माँ ही चन्दू की माँ थी गाँव में। दातादीन आज भी अपना सबकुछ बरबाद करना मंजूर कर सकता था लेकिन चन्द की माँ के दिल में ठेस लगना उसे गवारा नहीं था।

रमधनिया ने तुरन्त घास की गठरी बाँधली और दातादीन को खाने का बोहिया देकर सीधी गाँव की ओर लपकी। कुछ घबराहट-सी बढती जारही थी उसके भी दिल में।

जब रमधनिया घर के आँगन में पहुँची तो चन्दू खाट से उठ चुका था। वह बैठा था अपनी माँ के पास और माँ उसे समझा रही थी; कह रही थी,—"चन्दू ! तूने आज तक जो किया, सो किया, अगर तू आज भी कसम खाकर अपनी आवारा चौकड़ी छोड़ दे तो यह खान्दान फिर उभर सकता है।"

"माँ, मैं अब कहीं भी नहीं जाऊँगा।" उतरती सी जबान से चन्दू ने

कहा और चन्दू की माँ को यकीन आता जारहा था अपने चन्दू पर। वह प्रसन्न थी कि जब वह यह सूचना दातादीन को देगी तो दातादीन प्रसन्नता से उछल पड़ेगा।

रमधनिया घास की गठिया नीह पर पटक कर सीधी कोठे में चली गई। झुनिया वहाँ अकेली कपास ओटने की चर्खी लिए बैठी थी।

"तेरा बाप अन्दर कोठे में तो नहीं आया।" रमधनिया ने पूछा।

"क्यों ? आया तो था। सभी चीजें भी देखी थीं उसने उलट-पलट कर।" झुनिया स्वाभाविकता से बोली।

"हूँ !" रमधनिया ने कहा, और फिर झुनियाके कान में चुपके से बोली,"अब ध्यान रखना आगे से। इन चीजों से उसका कोई सरोकार नहीं। मुझे तो काम करने जाना ही होगा जंगल बाहर, लेकिन तुझे अब कहीं नहीं ले जाउंगी। तेरा बाबा कहता था कि होशियार रहना।"

"होशियार रहना !" बड़े आश्चर्य से झुनिया ने कहा,—"लेकिन माँ ! किस से होशियार रहना ?"

"अपने बाप से; समझी ! नहीं तो किसी तरह अपनी हड्डियों को पेल-पेल कर जो थोड़ा बहुत तीयल-तागा तेरी शादी के लिए जोड़ पाई हूँ उस सब को बेच-खोच कर शराब पी जायगा।" रमधनिया ने बहुत ही गम्भीरता से कहा।

झुनिया अब समझदार थी,—बच्ची नहीं रह गई थी वह। उसने अपनी माँ की पीड़ा को पहचाना और विश्वास के साथ कहा,—"तू फिकर न कर माँ, मेरे रहते यहाँ से बापू कुछ नहीं ले जा सकेगा।"

फिर एकदम मुस्करा कर रमधनिया बोली,—"कुछ तुझसे भी बोला तेरा बापू !"

"कहाँ माँ ! एक बार भी नहीं। कुछ भी तो नहीं बोला। एक तो उठा ही दिन चढ़े और फिर तभी से दादी माँ के पास बैठा है। आज बड़ी-बड़ी बातें समझाई हैं दादी माँ ने उसे। पूरी दस साल की

कहानी भी रो-रो कर सुनाई है। पर माँ बापू ने तो हूँ,—हाँ के अलावा कुछ कहा ही नहीं। बस बैठा-बैठा हुँस रहा था,—मानो कुछ हुआ ही नहीं। हाँ, साहूकार के बेटे का नाम आने पर तो बलबला उठता था कभी-कभी।"

रमधनिया मन में सब कुछ समझ रही थी। कोठे से बाहर आई तो चन्दू अपनी माँ के पास से उठ कर कहीं चला गया था। रमधनिया भी गांव की ओर गई और सीधी मुनिया के घर पहुँची।

मुनिया खाना बना रही थी। उसने खाने पर से उठकर रमधनिया को पीढ़ा दिया और चूल्हे के पास ही बिछाया उसे। इससे पहले कि रमधनिया कुछ कहती मुनिया ही कह उठी,—"बहू! एक बात सुनले आज, और गाँठ बाँध लेना उसकी। चन्दू ने अपना रवैया बिलकुल नहीं बदला है। कल रात रमला के घेर में खूब शराब उड़ी है। कहीं ऐसा न हो कि एक-आध छील पत्तर और दो-चार लत्ते कपड़े जो तूने मुनिया की शादी के लिए जुटाये हैं, उन्हें भी यह बेच-खोच डाले। चन्दू सब कुछ कर सकता है।" सीने में एक दर्द लेकर मुनिया ने कहा।

रमधनिया की आँखों में आँसू आगये यह सुनकर। वह ओढ़ने के पल्ले से आँखें पोंछकर बोली,—"ननदजी! मेरा नसीबा ही फूटा हुआ है।" और फिर उसने कुछ न कहा। वह मौन हो गई। मुनिया ने जो कुछ कहा था वह वही तो था जो दातादीन से वह सुन चुकी थी।

मुनिया के पास रमधनिया एक ताला माँगने आई थी। ताला लेकर वह सीधी अपने घर चली गई। इस समय अधिक बातें करने का समय नहीं था उसके पास। रमधनिया को फिर जंगल जाना था।

: १३ :

चन्दू जेल से छूट कर गाँव में आगया लेकिन उसे लगा कि मानो यह भी कोई उससे बड़ी भारी भूल ही हुई। मशक्कत वहाँ थोड़ी बहुत जरूर करनी पड़ती थी लेकिन फिर आराम से सोना मिल जाता था,—मस्ती की छानता था चन्दू। लेकिन अब यहाँ गाँव में आकर सुबह-ही-सुबह दातादीन के साथ खुरपी लेकर घास खोदने कौन जाय ?

दो दिन...चार दिन...छै दिन...आठ दिन....इसी तरह दिन चढ़े सोकर उठते, फिर इधर-उधर गाँव में टल्लेबाजी करते हुए मटर-गश्त करते, यार लोगों में बैठकर ताश और चौपड़ खेलते, जौ की खिंची शराब, सोमरस, पान करते व्यतीत हो गये; पर चन्दू ने यह देखने की कोशिस नहीं की कि वह सुबह-शाम जो आराम से खाट पर बैठ कर जो रोटियाँ तोड़ता था वह कहाँ से आती थीं।

चन्दू का रौब था गाँव पर। उसकी लाठी में 'राम' बोलता था। उसकी मूँछों के तनाव में थरथराहट थी, उसकी आँखों की त्यौरी में कम्पन थी, उसकी चाल में दर्शकों का दिल दहलाने की शक्ति थी और उसकी गर्दन के इधर-उधर घूम जाने से लोग प्रकम्पित हो उठते थे।

मुनिया का बाप रामू ज्योंही चौंतरे[1] से नीचे उतरा तो चन्दू

---

१. गाँवों में पुरुषों की बैठने की बैठकों के सामने मिट्टी के ऊँचे चबूतरे बना लिए जाते हैं जिन पर संध्या को मिलने-जुलने वाले लोग चारपाइयाँ डाल कर बैठते, बातें करते तथा विशेष रूप से हुक्का पीते हैं।

सामने पड़ गया। चन्द रामू की इज्जत करता था। उसने आगे बढ़कर कहा,—"काका, राम-राम।"

"राम-राम बेटा! अच्छे तो हो चन्दू।"

"तुम्हारी मेहरबानी है काका! सब ठीक ही है।"

रामू कहीं जाता-जाता रुक गया। न जाने क्या समझ में आगई रामू के। चन्दू से बोला,—"आओ बेटा!" और दोनों फिर चबूतरे पर चढ़कर बिछी चारपाइयों पर बैठ गये।

बात रामू ने ही शुरू की,—"चन्दू! तू अब बड़ा हो गया, कुछ बच्चा तो रहा नहीं जो तुझे समझाया जाय। अपने बाप और अपनी बहू की ओर देख। तेरी वजह से उन्हें कितना कष्ट सहना पड़ा,—और पड़ रहा है अभी सहना। तू भी तो अपने फ़र्ज को पहचान।

"झुनिया शादी के लायक हो गई। दातादीन बूढ़ा आदमी है। कहाँ-कहाँ वर खोजने जाय? कुछ और नहीं करता तो कम-से-कम यही काम कर तू।"

चन्दू गर्दन नीची किये सुनता रहा सब कुछ। रामू काका के सामने कभी बोलता वह नहीं था। उसने रामू को विश्वास दिलाया कि वह अब घूम फिर कर पहले यही काम करेगा और फिर राम-राम करके चल दिया।

कुछ ही दूर बढ़ा था कि सामने से साहूकार का बेटा आता दिखलाई दिया। उसे देखते ही चन्दू के तन बदन में आग लग गई। उसकी ओर को ऐसे झपटा जैसे मांस के लोथड़े पर चील झपटती है। साहूकार का बेटा चाहते हुए भी कि अपनी हवेली में घुस जाय, न घुस सका।

चन्दू ने कड़क कर कहा,—"क्यों बे कमीने! आखिर दिखा कर ही रहा अपनी जलालत। बेटा! तेरे भी अगर चीर-फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े न उड़ा दिये तो हमारा नाम चन्दू नहीं।

"तूने हमारा घर में रहना छुड़ाया है तो हम तेरा इस दुनियाँ से टिकट काट कर दम लेंगे।" और इतना कहकर चन्द ने अकड़ के साथ

भूँछों पर ताव दिया।

"चन्दू भय्या! तुम तो खामखा नाराज हो रहे मुझ गरीब पर।" गिड़गिड़ाकर साहूकार का बेटा बोला,—"यह सब जो कुछ भी हुआ था मैंने थोड़े ही किया था। भला मैं भी कभी ऐसा कर सकता था! सरकार के सामने पेश ही नहीं चलती। उलटी भी अपनी ही रखती है सरकार और सीधी भी। तुम्हें क्या बताऊँ कि दारोगा ने मेरा मार-मार कर पलस्तर बिखेर दिया,—कहा-चन्दू का नाम ले, चन्दू का नाम ले।

"मैं मजबूर हो गया चन्दू भय्या, बिलकुल मजबूर। नहीं तो वह दारोगा का बच्चा मुझे ही हवालात में बन्द किये दे रहा था। बड़ा ही खौफनाक था वह काला शेख का बच्चा।"

चन्दू ने यह सुनकर एक लम्बी गहरी साँस ली और फिर कड़क कर बोला,—"बस बंद कर बकवास। पाजी कहीं का! तू बेवकूफ समझता है चन्दू को। चन्दू ने तेरे जैसे न जाने कितने बदमाश देखे हैं।

"मेरे बाप, माँ और और बच्चों को घर से निकालकर बाहर खड़ा कर देने के लिए भी तुझे पुलिस के दारोगा ने ही कहा होगा?" और यह कहते समय चन्दू के दोनों नेत्र लाल अंगारों के समान दहक रहे थे। उसकी गर्दन का तनाव बढ़ रहा था और लाठी पर हाथ की मुट्ठी बुरी तरह कसती जा रही थी।

चन्दू न जाने किस तरह अपने को सँभाल कर रह गया नहीं तो लाठी से एक ही हाथ में साहूकार के बेटे की खोपड़ी चकनाचूर कर देता। एक घृणा की दृष्टि वह उस पर डालकर आगे बढ़ गया,—बोला नहीं फिर एक शब्द भी।

साहूकार का बेटा चन्दू के आने की खबर सुनकर किसी रिश्तेदारी के गाँव में चला गया था और आज ही लौटा था वहाँ से।

चन्दू चला गया लेकिन वह न हिल सका बहुत देर तक। उसे लगा कि अब उसकी खैर नहीं। उस गाँव में चन्दू से दुश्मनी करके रहना उसके लिए मुश्किल था। कानून की मोटी-मोटी आँखें सब कुछ

नहीं देख सकतीं और पुलिस की लम्बी-लम्बी भुजाएँ हर समय उसकी रक्षा के लिए नहीं पहुँच सकतीं।

चन्दू यहाँ से सीधा रमला के घेर में गया। रमला ने लंगोट कसा हुआ था और वह तेल-मालिश कर रहा था।

चन्दू को आते देखकर बोला,—"उस्ताद अच्छे वक्त पर आगये। आज दम ही नहीं भरा था [1]। तीन सौ डंड और पाँच सौ बैठक लगा चुका हूँ। लाओ तुम्हारी मालिश कर दूँ तो शायद कुछ दम भरे।"

चन्दू ने मुस्कराते हुए कुर्त्ता उतार कर एक ओर खाट पर रख दिया और धोती भी। नीचे लाल लंगोट कसा हुआ था। क्या प्यारा बदन था चन्दू यार का,—रमला देखते ही मुग्ध होजाता था। चन्द के बदन के हर मसल में एक अजीब उभार था। पिंडली, रानें, सीना, बगलें, कंधे, भुजाएँ सभी की मांस-पेशियाँ एक विशेष सौंदर्य के साथ रमला के तेल लगाते ही दमदमा उठीं।

मालिश के बाद चन्दू ने एक फरैरी-सी लेकर कुछ डंड और बैठकें भी लगाईं और फिर गर्दन को अकड़ाकर इधर-उधर देखते हुए कहा, "अबे, सुना तूने रमला! वह साहूकार का बच्चा आगया है।"

"आगया!" एक दम प्रसन्नतापूर्वक रमला ने उछलकर पूछा?

"हाँ आगया और अभी रास्ते में कम्बख्ती का मारा वह चन्दू को मिल भी गया। वह फटकार बतललाई मैंने बदमाश को कि खून पानी हो गया होगा।"

"उस्ताद चन्दू! अब तुम जो कह दो सो बनादूँ उस पाजी का-कहदो तो उसकी मशक [2] बनाकर गंगा-नहर के हवाले कर दूं। फिर देखा जायगा पुलिस-वुलिस का चक्कर पीछे से।" स्वाभाविक सरलता से रमला ने कहा।

---

१. दमन भरना से तात्पर्य है कि कसरत पूरी नहीं हो पाई थी।
२. मशक बनाना माने हाथ पैर बाँध कर गठरी सी बना देना।

"इस नीच को इस तरह नहीं मारना है रमला ! इसने बड़ा खून पिया है लोगों का। इसे तड़पा-तड़पा कर मारना है।" चन्दू खाट को धूप में खींचकर उसपर बैठता हुआ बोला,—"लेकिन रमला ! सच पूछे तो गाँव में रहने से तो जेल ही भली थी।"

"बस, तुमने मेरे मन की बात कहदी उस्ताद ! जो ऐश की वहाँ छनती थी वह यहाँ कहाँ ? वहाँ काम करने के बाद रोटी की फिक्र नहीं रहती थी।" रमला बोला।

"यह बात नहीं बे रमला ! वहाँ शर्म की कोई बात नहीं थी। सब लोग एक जैसा ही तो काम करते थे। लेकिन यहाँ अगर मैं कल खुरपी लेकर घास खोदने गया तो जानते हो यही पाजी साहूकार का बेटा क्या कहेगा ?—वह कहेगा—'खुदवादी न घास हमने। बड़ा बनकर चला था जमींदार का बच्चा।" और इतना कहते-कहते शर्म से चन्दू की गर्दन झुक गई,—वह बोल न सका आगे।

चन्दू की दशा देखकर रमला एक देसी शराब की बोतल भुस के बूँगे [1] में से निकाल लाया और सामने रखते हुए बोला,—"लो उस्ताद चन्दू ! थोड़ी पीकर गम गलत करलो। यह दुनियाँ के झमेले तो चलते ही जायँगे। जिन्दगी के साथ इन्हें भी चलना ही है, फिर फिक्र किस बात की।"

"फिक्र की कोई बात नहीं रमला ! लेकिन झुनिया की शादी का सवाल है।" बोतल में से आधपाव शराब मिट्टी के शकोरे में ढालकर एक दो घूंट में ही हलक से नीचे उतारते हुए चन्दू ने कहा।

रमला जिस दिन जेल से छूट कर आया था उसकी नजर उसी दिन झुनिया पर पड़ी थी। बद नजर तो वह हो नहीं सकती थी, क्योंकि उस्ताद चन्दू की लड़की थी झुनिया, लेकिन उसकी मस्त जवानी देख कर कुछ लालच अवश्य आगया था रमला के मन में।

१. भुस को एक जगह इकट्ठा करके उसे चारों ओर से एकसा बाँध दिया जाता है। इससे झुसकी आँधी और बरसात से रक्षा होती है।

रमला और कन्नू बातें भी कर चुके थे खूब घुल-मिल कर इस विषय में। रमला ने मौका देखकर कहा,—"उस्ताद चन्दू! तुम सच जानो झुनिया की तो हमें भी बेहद चिन्ता है।"

रमला से सहानुभूति के यह शब्द सुनकर उस्ताद चन्दू प्रसन्न हो गये और उन्होंने रमला को भी झुनिया के लिए वर खोजने का कार्य सुपुर्द करदिया, लेकिन कह दिया साथ-ही-साथ कि उसके बाप दातादीन को कानों कान सूचना न मिले कि वह लोग भी इस काम में उसे सहयोग दे रहे हैं।

इसके बाद चन्दू वहाँ से सीधा नहर की ओर गया और कपड़े किनारे पर रख कर गड़ाम से नहर में कूद पड़ा। खूब जी भर कर तैरा और नहाया—घंटों नहाता रहा, बेफिक्री के साथ। पानी से निकला तो नहर के पुल पर उसकी दृष्टि गई। रमधनिया और दातादीन दो गठिया घास अपने सिरों पर लादे, उनके बोझ से दबे, बल खाते से तेजी के साथ गाँव की ओर बढ़ रहे थे। चन्दू चाहता तो फूल के समान दोनों गठरियों को उठा कर एक के ऊपर एक रख लेता, लेकिन वह कर न सका; उधर जा न सका; उनसे बोल न सका।

विचार चन्दू के मन में आता और चला जाता था। एक मस्ती थी उसकी जिन्दगी में,—जिम्मेदारी नहीं।

संध्या को दातादीन की रामू से बातें हुईं तो उसने चन्दू की दिन की बातों का हवाला दिया। दातादीन मुस्करा दिया रामू की बात सुनकर और फिर बोला,—"रामू भय्या! अपने बछड़े के दाँत मैं खूब पहचानता हूँ। तूने समझाया, यह मेहरबानी है तेरी, लेकिन जहाँ तक विश्वास की बात है वह मेरा चन्दू से उठ चुका है। मुझे उसके हर काम में शराब की गन्ध आती है, नाक सड़ने लगती है मेरी। चन्दू अपनी माँ का बेटा है और उसकी माँ मेरी औरत है,—वह औरत है, जिसने जिन्दगी के पचपन साल निहायत ईमानदारी, मेहनत और प्यार के साथ दातादीन के साथ बिताये हैं,—बस, इसीलिए चन्दू को आज

भी मेरे घर में सोने के लिए खाट, पहनने के लिए कपड़ा और खाने के लिए रोटी मिलती है,—मिलती भी रहेंगी जब तक दातादीन दे सकेगा,—जब तक चन्दू की माँ कह सकेगी।"

रामू दातादीन की बात सुन कर चुप हो गया। चंदू को रामू समझता नहीं था, यह बात नहीं थी,—परन्तु उसने आज महसूस किया कि वह दातादीन को ही नहीं समझता था। दातादीन के प्रति रामू के दिल में श्रद्धा का अपार सागर हिलोरें मारने लगा। उसका मस्तक अन्दर-ही-अन्दर झुक गया।

दातादीन प्यार भरे शब्दों में बोला,—"रामू! तेरे दिल और तेरी नीयत को मैं जानता हूँ लेकिन तू चन्दू की नीयत को नहीं पहचान सकता।

"मैं जानता हूँ कि मेरा चन्दू सुधर सकता है लेकिन उसे सुधारना अब मेरे बूते की बात नहीं रही। तू भी नहीं सुधार सकेगा उसे। मेरी रमधनिया जैसी नेक बहू ही जब नहीं सुधर सकी उसे तो कौन सुधार सकेगा?

"उसे बिगाड़ा है रमला और कन्नू ने और इनकी सोहबत से चन्दू को दूर करना अब मेरी ताकत से बाहर है।

"उसे बिगाड़ा है चन्दू की माँ ने, और वह समय अब निकल चुका जब उसे रोका जा सकता था।

"भूल मुझसे भी हुई कि मैंने अपनी औरत के प्यार में अपने चन्दू को भुला दिया।

"अब तो भगवान् ही सुधारे तो सुधरेगा चन्दू।"

बिलकुल यही बात रामू से उसकी बेटी मुनिया ने कही थी। रामू चुप हो गया। वह सोच ही न सका आगे की बात। "भावी बलवान है।" उसने आह भरकर कहा।

"बस, यही समझलो रामू! 'भावी बलवान है', और जहाँ भाग्य हेठा होता है वहाँ तो भावी बलवान ही नहीं, राक्षस बन जाता है।

फिर दातादीन ने तो मानो बिना भाग्य के ही जन्म लिया है इस पृथ्वी पर।" दातादीन लड़खड़ाती-सी जबान से बोला।

संध्या को आज चन्दू ने बैठ कर दातादीन से झुनिया की शादी के विषय में बातचीत कीं। दातादीन ने सब सुनीं और अन्त में केवल इतना ही कहा,—"लड़का खोजने की कोशिस करो चन्दू! मैं तो कर ही रहा हूँ जो मेरी ताकत में है।"

और चन्दू दूसरे दिन से वर की खोज में सही नीयत से निकल पड़ा। उसने निश्चय किया कि वह झुनिया के लिए कोई अच्छा वर खोज ही निकालेगा।

: १४ :

झुनिया बड़ी होती जा रही थी और उसकी शादी का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। दातादीन टक्करें मार-मार कर थक गया, रामू ने अपनी सारी ताकत लगा दी लेकिन किसी भाई-बिरादरी के खान्दानी आदमी ने पीठ पर हाथ नहीं रखने दिया।

चन्दू डकैत की लड़की थी झुनिया,—डकैत से रिश्तेदारी,—मुँह पर चाहे भले ही किसी ने कुछ न कहा हो लेकिन पीठ पीछे रोड[1] पिचका कर इतना जरूर कहा,—'डकैत की लड़की का रिश्ता लेकर हम अपने खान्दान को दाग लगायें। जब सब रिश्ते मारे जायेंगे तो फिर सोच लेंगे डकैतों से रिश्तेदारी करने की।

दस-दस साल की जेल काट कर आते हैं और बात करते हैं नक्कू[2] बन कर।

'घर बार तो सब साहूकार ने कुड़क करा लिया है चौधरी! देने लेने के नाम भी भगवान का नाम ही मिलेगा इन महाशय के यहां तो।' पास में बठा उसका एक साथी कहता।

'फिर तू क्यों इस पचड़े में पड़े? लाख में एक है तेरा बेटा। अभी परसों ही भीखनपुर का चौधरी आया था अपनी लड़की का रिश्ता करने। घोड़ी देने को कहता था लौंडे को, साथ में एक हजार रुपया भी

---

१. मोटा होठ।

२. नाक वाला, शान और इज्जत वाला, सम्मानित व्यक्ति।

और फिर सब बरातियों की मिलाई। अगले ने दस बासन[1] तो चांदी के बनवा रखे हैं दहेज में देने को। सात चीज सोने की और चांदी की चीजों का तो ढेर है बस।

चौधरी के साथ जो नाई आया था उसने सब बतला दिया है मुझे।' मुँह बना कर एक चौधरी कहता।

और इसी तरह जहां भी झुनिया के रिश्ते के लिए गये निराश ही लौटना पड़ा; कोई बात न बन सकी।

यों चन्दू के सामने कोई कुछ नहीं कहता था लेकिन मन में सभी नफरत करते थे, सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते थे।

दातादीन समझता था अपनी परेशानी को, वरना क्या कारण था कि वह झुनिया का रिश्ता न कर पाता। दातादीन के बूढ़े कान दूर और पीछे की बातें भी सुनते थे और उसका दिमाग महसूस करता था अपनी दिक्कतों को। उसके चन्दू के कारनामे ही दातादीन के रास्ते की दिक्कतें थीं।

आज रामू से दातादीन ने साफ-साफ कह दिया,—"रामू! रिश्ता कोई कहां से ले? नेकनामी क्या कम फैली हुई है बिरादरी में? और फिर जो कुछ देने-लेने के लिए मेरे पास है, उसे भी सब जानते हैं। जो दातादीन अपना घरबार नहीं बचा सका साहूकार से, वह शादी में ही कहाँ से न्यौली[2] उलट देगा लड़के वालों की झोद[3] में।

---

१. बरतन

२. न्यौली एक रुपये की लम्बी पतली, लगभग एक गज लम्बी थैली होती है जिस में फँस कर एक-एक रुपया आता है। इसे गाँव के लोग धोती की फेंट के अन्दर लपेट कर कमर से बाँध लेते हैं। जब से नोटों का रिवाज अधिक प्रचलित हुआ है तब से इसका प्रयोग कम हो गया है। चाँदी के रुपयों के जमाने में इसका प्रयोग बहुत होता था। गाँवों में पुराने लोग आज भी रखते हैं।

३. कुछ लेने के लिए पसारा हुआ कपड़ा।

"न्यौली-बोली की इतनी बात नहीं है भय्या ! जितनी चन्दू की बदनामी की है। असल बात तो वही है। लोग मुँह पर चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं और पीठ पीछे साफ साफ कह डालते हैं। कुछ-न-कुछ बहाना निकल ही आता है रिश्ता न लेने का।" रामू ने भारी मन से कहा।

"बहाना निकालना कौन मुश्किल है रामू ! जब कोई काम न करना हो तो लाख बहाने बन जाते हैं। किसी तरह गंगा नहा जाना चाहता हूँ रामू ! लेकिन मुझे दीखता है कि किसी दिन दातादीन इसी तरह इस दुनियाँ से चल बसेगा और....."

"ऐसा मत कह दातादीन ! झुनिया तेरी पोती नहीं, मेरी भी पोती है। तेरे सामने झुनिया के हाथ पीले हो जायँगे, तू फिकर न कर।" ढ़ाढ़स बँधाते हुए रामू ने कहा।

"रामू ! तेरा ही सहारा है मुझे अब इस बुढ़ापे में। इधर-उधर जाने से भी लाचार हो गया हूँ। चन्दू अभी और दो साल जेल से न आता तो मैं झुनिया के हाथ पीले कर ही डालता। बात दबी-सी होती थी चन्दू की। लेकिन जब से यह आया है तो फिर बात ताजा हो गई है लोगों के दिलों में।" दातादीन का मन इस समय बहुत ही भारी हो रहा था।

"तुम यह ठीक कह रहे हो दातादीन ! यही तो दिक्कत हो रही है रिश्ते में।"

दातादीन आज बहुत देर रामू की दुकड़िया में बैठा रहा। उसने अपने दिल की न जाने कितनी बातें कहीं और कहता ही रहा वह जब तक बैठा रहा। एक के बाद एक, शृङ्खला बन गई बातों की।

रामू ने सब सहृदयता पूर्वक सुनी और सुनकर अपनी सहानुभूति का

---

३. कमरे के बीच में शहतीर डालकर और फिर उसके दोनों ओर कड़ियाँ डाल कर बनाया हुआ बड़ा कमरा।

मरहम लगा दिया दातादीन के घावों पर।

जब दातादीन उठकर चला तो अँधेरा हो गया था। रामू के दुकड़िया से अपने घर को जाते समय रमला का घेर बीच में पड़ता था। दातादीन उधर से निकला तो चन्दू को उसने वहाँ जमा हुआ पाया। हाथ उठा कर, सीना तान कर, मूँछ पर ताव देकर बातें फन्याई जारही थीं। जबाने कतरनी [1] (कैंची) के समान बेत-हाशा चल रही थीं। बड़े-बड़ों को मक्खी-मच्छर के समान समझकर बातें कीं जा रही थीं।

यह सब देखकर दातादीन के तन बदन में आग लगगई। जीमें आया कि पैर से फटी जूती निकाल कर अभी इस चन्दू के बच्चे की शेखी खाक में मिला दे; लेकिन वह कर न सका। दिल में पैदा होने वाली जलन को दिल में ही समेट कर रह गया। अपना ही एक पली खून सुखाना उसने मंजूर किया लेकिन चन्दू से कुछ न बोला।

चुप-चाप लाठी टेकता टेकता घर पहुँच गया। झुनिया रोटी पो रही थी। रमधनिया कुट्टी काट रही थी,—आज देर हो गई थी उसे जंगल से आने में। चन्दू की माँ आराम से खाट पर बैठी थी रजाई में अपनी बूढ़ी हड्डियों को समेटे। हल्की-फुल्की बुढ़िया थी चन्दू की मां बाल सब सफेद, गालों में झुर्रियाँ, दाँत टूट चुके थे, लेकिन डाढ़ें सब बर-करार थीं,—खूब काम देती थीं।

झुनिया ने दादी को खाट पर ही ले जाकर दे दी थीं रोटी।

दातादीन भी आकर पास में पड़ी दूसरी खाट पर बैठ गया। कुछ बोला नहीं वह।

"चन्दू नहीं मिला कहीं।" चन्दू की माँ ने दातादीन से पूछा।

"मैं चन्दू को ढूंढने नहीं गया था चन्दू की माँ। तू उस नालायक का नाम मेरे सामने न लिया कर। क्या तू चाहती है कि मैं साल छै

---

१. यह ग्रामीण शब्द बहुत वेग और बल के साथ बातें करने के लिए प्रयुक्त होता है।

महीने भी और न जी सकूँ,—अपनी झुनिया की शादी भी न कर सकूँ।"

दातादीन के हाथ पैर काँप रहे थे।

चन्दू की माँ सहमी-सी रह गई यह बात सुनकर। उसके हाथ का टुकड़ा हाथ में और मुँह का मुँह में रुक गया; परन्तु वह बोली एक शब्द नहीं।

दातादीन अपनी गाढ़े की चादर सिरहने से लगाकर धीरे से खटिया पर लेट गया। नेत्र बन्द कर लिये उसने। उसके हृदय की पीड़ा वही जानता था।

दातादीन के शब्द चन्दू की माँ के दिल में चुभ गये। बहुत गहरा घाव किया उन शब्दों ने। वह एक क्षण के लिए तिलमिला उठी। मन में आया कि कुछ कह डाले वह भी, उतना ही तीखा, बल्कि उससे भी अधिक तीखा, जितना दातादीन ने कहा था, लेकिन वह अपने को सँभाल कर चुप हो गई।

दातादीन का मन व्याकुल हो उठा था। वह लेट भी न सका कुछ देर। उठकर बैठ गया खाट पर और बिना यह समझे और देखे कि उसने चन्दू की माँ से क्या कहा और उस पर उसका क्या प्रभाव हुआ वह बहुत ही दीन स्वर में बोला,—"चन्दू की माँ! अब तो मर जाना चाहता हूँ बस!"

चन्दू की मां कुछ न बोली। उसी तरह हाथ का टुकड़ा हाथ में और मुँह का मुँह में लिए जड़वत बैठी थी वह परन्तु उसने महसूस अवश्य किया कि दातादीन के दिल पर कोई गहरी ठेस लगी थी। दातादीन को चन्दू की मां ने जिन्दगी भर परखा था। उसके दिल को जरा दुखाने के बजाय दातादीन अपने ऊपर बड़े-से-बड़ा सदमा सहन करने को तय्यार रहता था। यह राज की बात नहीं थी चन्दू की मां के लिए,—एक सचाई थी,—उसके जीवन की गहरी सचाई।

चन्दू की मां ने मुँह का टुकड़ा अन्दर को सटकते हुए गम्भीरता

पूर्वक कहा,—"चंदू के बापू! बालकों की तरह नादान न बन इस बुढ़ापे में। क्या तू समझता है कि मैं चंदू की नालायकी और तेरी मजबूरी को नहीं जानती? लेकिन सब-कुछ जानकर भी लाचार हूँ मैं, मजबूर हूँ। मैं मां हूँ और तू बाप है,—बस फर्क इतना ही है। तू कहता है कि मैं भी तेरे जैसी ही कठोर बन जाऊँ, तो बन जाती हूँ मैं। चंदू आज से इस घर में कदम नहीं रख सकेगा।"

चन्दू की मां के यह शब्द दातादीन ने सुने, रमधनिया ने सुने और झुनिया ने भी। घर का वातावरण एक दम शांत हो गया, बहुत गम्भीर। ऐसा लगा, जैसे हवा भी वहां चलनी बन्द हो गई, उसका भी दम घुटने लगा।

"तू रूठ गई चंदू की मां!" दातादीन भारी मन से बोला। "लेकिन यह भूल है तेरी। चंदू इस घर में आवे-न-आवे इससे मेरा कोई सरोकार नहीं। तूने इतने दिन जिन्दगी के मेरे साथ गुजार कर भी मुझे कठोर दिल वाला कहा,—मुझे बस यही अफसोस है।"

फिर अचानक ही सबने देखा दातादीन मुस्करा रहा था। मानो कुछ हुआ ही नहीं। वह जानता था कि चंदू की मां ने जो कुछ भी उसे कहा, उसके पीछे एक मां का दिल था, एक मां की ममता थी। वह क्षम्य था सब कुछ,—कुछ था ही नहीं वह।

"झुनिया बेटी! मेरी रोटी भी ले आ।" दातादीन ने चूल्हे की ओर मुँह करके कहा।

झुनिया रोटी ले आई एक थाली में रखकर और दातादीन ने खाना शुरू कर दिया। रमधनिया गाय की सानी करने में लग गई, लेकिन चंदू की मां उसी तरह मौन बैठी थी।

चन्दू की मां ने महसूस किया कि उसने दातादीन को कठोर दिल वाला कहकर भूल की। दातादीन के दिल की नरमाई को तो उसने खूब परखा था और जी खोल कर परखा था। ऊपर से इस बूढ़े खूसट से शरीर वाले व्यक्ति का दिल अन्दर से कितना नरम था यह राज

चन्दू की मां से अधिक और किसी पर सुना हुआ नहीं था।

"तूने कह दिया बेटे के प्यार में चन्दू की माँ! जो न कहने की बात थी; लेकिन मैं यह जानता हूँ कि वह जो कुछ भी तेरी जबान से निकला वह तूने नहीं कहा। रोटी खा अब।" दातादीन रोटी का टुकड़ा तोड़ता हुआ बोला।

दातादीन के यह शब्द सुनकर चन्दू की मां का भारी मन हलका हो गया। उसके सूखे हुए हलक में तरावट आगई और उसका जकड़ा हुआ हाथ हरकत करने लगा। उसका मुँह भी चलने लगा और वह रोटी खा रही थी। दातादीन अपनी खाट पर बैठा रोटी खा रहा था और चन्दू की माँ अपनी खाट पर।

इसी समय चन्दू भी बाहर से आगया लेकिन बोला नहीं उससे कोई भी।

चन्दू को यह घर स्वयँ कुछ उधारा-उधारा लगता था। अपनापन-सा उसे कुछ दिखलाई ही नहीं देता था वहां। किसी को उससे बैठकर बातें करने की फुरसत नहीं थी। कभी-कभी अकेले में माँ से ही दो चार बातें हो जाती थीं। मन उचाट-सा रहता था हर समय चन्दू का। बस जी लगता था तो वहीं चौकड़ी के बीचों-बीच,—जहाँ चन्दू सरदार था और सब उसका लोहा मानते थे।

चन्दू मूर्ख नहीं था। वह जानता था कि उसके घर में उसका कोई मान नहीं करता। यों प्यार चाहे उसे करते हों थोड़ा बहुत अपना समझकर, लेकिन घृणा भी उनके मन में कम नहीं थी उसके प्रति। इस घर का हर प्राणी चन्दू के कन्धे पर जुआ रखकर उसे बैल की तरह जोतने पर तुला हुआ था और चन्दू एक जोरदार बछड़े की तरह उस जुए को बराबर दूर-ही-दूर फेंकता चला आरहा था।

सच यह था कि चन्दू को वह जिन्दगी पसन्द नहीं थी। जेल जाने से पहले वह जेल का नाम सुनकर कुछ भयभीत भी हो उठता था, पुलिस के नाम से भी कांप जाता था,—लेकिन अब तो वह सब मामूली बातें थीं

उसके लिए। पुलिस में याराना होगया था उसका,—उसके पास बैठकर बीड़ी पीजाते थे पुलिस के सिपाही और अब कुछ मानने भी लगे थे उसे। दारोगा भी अब यूंही आकर अनर्गल बातें उससे नहीं करता था,—दस साल का सनदयाफ्ता था वह,—भय भी लगता था उससे।

सरदारी छोड़ कर मजदूरी करने का खयाल चन्दू का नहीं था। वह तो जिन्दगी को ऐश से काटने का हामी था,—चाहे वह जेल में कटे या जेल से बाहर। कोई फिक्र दिमाग में लेकर चन्दू जिन्दा नहीं रहना चाहता था। अपनी मस्ती में फर्क आने देना चन्दू को गवारा नहीं था,—चाहे कोई भला माने या बुरा। फर्ज नाम की चीज को वह बकवास समझता था,—नासमझी।

चन्दू से जब कोई कुछ न बोला और रोटी की भी बात न की तो वह फिर घर से बाहर निकल गया और सीधा कन्नू से जाकर बोला,—"अबे कन्नू! कुछ ढंग-डौल बना या नहीं।"

"अभी तो कुछ नहीं बना उस्ताद!" कन्नू ने लाचारी जाहिर करते हुए कहा।

"और रमला कहाँ गया है।" चन्दू ने पूछा।

"शहर से आने वाले रास्ते पर अड्डा जमा लिया है रमला ने उस आम के पेड़ के नीचे। कल पंद्रह रुपये देगया एक लाला घिघिया-कर,—और चार सेर पेड़े भी।" कन्नू ने सफलता के चिन्ह मुँह पर लाकर कहा।

"हूं।" कहकर चन्दू फिर आगे कुछ नहीं बोला। जाने क्या सोचता हुआ चल पड़ा और घर आकर अपनी खाट पर लेट गया।

झुनिया ने वहीं खाट पर चन्दू को भी रोटी लेजाकर देदी,—जैसी कुछ भी थी,—नाक-भौं सिकोड़ कर खा भी लीं उसने,—लेकिन उसे यह खाना पसन्द नहीं था।

रोटी खाकर चन्दू वहीं सो गया,—चुपचाप, बिना एक शब्द भी किसी से बोले।

: १५ :

चन्दू को जेल से बाहर आकर पैसे की रोजाना जरूरत रहने लगी और वह उसे मिलता नहीं था कहीं से। कोई साधन नहीं था उसके पास। आज उसके मन में आया कि क्यों न वह झुनिया की शादी कहीं से रुपया लेकर करदे। आखिर उसकी शादी भी तो दातादीन ने रुपया देकर ही की थी।

भाई-बिरादरी की चन्दू को चिन्ता नहीं थी; उससे सम्बन्ध भी नहीं था कुछ उसका। वह अपनी जिन्दगी का मालिक था। जब उसने अपनी यह नेक सलाह रमला और कन्नू को दी, तो वह तो उछल पड़े प्रसन्नता के मारे और उन्होंने चन्दू के विचारों की दाद दी।

"तुमने बिलकुल ठीक सोचा है उस्ताद चन्दू ! मैं तो पहले ही कहना चाहता था यह बात, लेकिन डरता था तुमसे कि कहीं तुम खुद-गर्ज न कह डालो अपने यार रमला को।" रमला ने कहा।

"इसमें खुदगर्जी की क्या बात है रे रमला ! यह तो व्यवहार का देना-लेना है। और फिर कानों-कान भी पता नहीं चलेगा किसी को। चुपके से आजायगा रुपया।" कन्नू ने बात का समर्थन करते हुए कहा।

रमला और कन्नू ने मामला पहले से ही तय्यार कर लिया था, वह तो लगे ही थे इस ताक-झाँक में। केवल संकेत भर चाहते थे उस्ताद चन्दू का।

चन्दू ने इधर अपने घर में रमधनिया से भी कभी-कभी कुछ सहानु-

भूति पूर्ण बातें कीं। झुनिया से भी बोला; और दातादीन से भी सलाह मशवरा करने बैठा। यह एक नाटक था जो वह रच रहा था, पैसे के लिए। दातादीन उसकी हर बात को शक की निगाह से देखता था। उसे विश्वास नहीं था चन्दू की किसी बात पर। पर झुनिया के लिए वर खोजने इधर-उधर जाने का भी एक भारी काम था, जिसे वह स्वयँ नहीं कर पा रहा था।

आज रमधनिया ने चन्दू को अपने आप वह सब सामान दिखलाया जो उसने झुनिया की शादी के लिए तय्यार किया था। अब पंद्रह तीयलें [1] हो गई थीं। पैरों के लिए झाँवरें और कानों के छोटे-छोटे बुन्दे भी उसने बनवा लिए थे।

संध्या को चन्दू ने दातादीन से जगतपुर में एक लड़का देखने की बात चलाई। उसने स्पष्ट कह दिया,—"कोई बड़ा पुराना घर नहीं है लेकिन लड़का तन्दरुस्त और सुन्दर है। खेती करता है एक हल की। दो खेत हैं उसके पास पंद्रह बीघे (कच्चे) के। हर हालत में हमसे किसी तरह गिरी हालत नहीं है उसकी। कोई झंझट नहीं है किसी तरह का।"

दातादीन ने चन्दू की बात गम्भीरतापूर्वक सुनी और रामू को बुलाकर सलाह की। रमधनिया के सामने भी बात आई लेकिन वह राय ही इसमें क्या दे सकती थी।

आखिर रामू ही चन्दू के साथ देखने गया लड़के को। लड़का वाकई अच्छा था, सुन्दर था और कारबार भी बुरा नहीं था उसका। मेहनती किसान था, लेकिन पीछे कुछ खान्दान में खराबी आजाने से गाँव के लोग उछटा देते थे रिश्ता लेकर आनेवालों को।

गाँव में पूछ-ताँछ से पता चला कि उसकी बुआ पर रुपया लिया था

---

१. देने लेने के कपड़ों का एक सेट, जिसमें या तो धोती जम्पर होता है या लहँगा और ओढ़ना।

उसके बाप ने और यही वह दाग था उसके खान्दान पर, कि जिसके कारण आज उसका रिश्ता नहीं हो रहा था। केवल यही दोष था इस नौजवान लड़के का।

रामू ने पूरी छानबीन की और पूरे हालात दातादीन को जाकर बतलाये। खान्दान के दाग की बात दातादीन ने सुनी तो उसका माथा ठनका; लेकिन फिर उसकी दृष्टि जब अपने खान्दान पर गई और अपने चन्दू के कारनामे उसके सामने आये, तो उसने तुरन्त निश्चय कर लिया कि 'रुपया' लड़के को दे देना चाहिए। अधिक छानबीन के लिए उसके पास समय नहीं था। वह इस कार्य को जल्दी-से-जल्दी सम्पन्न करना चाहता था। अच्छा खासा चलता फिरता शरीर रहने पर भी इधर कई दिन से उसका विश्वास उठता जा रहा था उससे, पता नहीं क्यों, वह महसूस कर रहा था कि अधिक दिन की मेहमानी नहीं रह गई थी उसके शरीर की इस दुनियाँ में। वह किसी तरह झुनिया की शादी अपनी आँखों से देखना चाहता था।

रिश्ता निश्चित हो गया। लड़के को रुपया दे दिया गया। लड़का स्वयँ कार-मुख्तयार था अपने घर का। कन्नू और रमला ने इस लड़के के खोजने में रात-दिन खाक छानी थी और सब निश्चय भी उन्हीं ने किया था। रुपया पूरा दो हजार निश्चय हुआ था जो पूरा-का-पूरा फेरे फिरने से पहले-पहले अदा कर देना था।

चन्दू को रमला और कन्नू ने सिर्फ पंद्रहसौ रुपया बतलाया और बाकी पाँच सौ में इन दोनों का बराबर-बराबर हिस्सा था।

दातादीन के घर पर ब्याह की तय्यारियाँ होने लगीं। गाँव में काना-फूंसी तो चली, लेकिन रमला और कन्नू ने बात का पता किसी को कानों-कान भी न होने दिया।

झुनिया और रमधनिया बहुत प्रसन्न थीं। रामू भी शादी के काम पर इस तरह जुटा था कि मानो उसकी अपनी लड़की की शादी हो रही थी। दातादीन कुछ अधिक दौड़-भाग करने योग्य न होने पर भी सब

कुछ कर रहा था। न जाने कहाँ से जान आगई थी उसकी बूढ़ी हड्डियों में। चन्दू की शादी से सत्तरह साल बाद यह शुभ दिन आया दातादीन के घर।

गाँव के तमाशबीन लोग यह देखना चाहते थे कि दातादीन क्या कुछ करता है शादी में,—लेकिन दातादीन को आज चिन्ता नहीं थी किसी की। खास तौर पर किसी की खुशामद करनेका उसका विचार नहीं था शादी में शामिल होने के लिए। लड़की की शादी थी, एक फर्ज था जिसे वह पूरा करना चाहता था, और देखना चाहता था कि भाई, बिरादरी, खान्दान, जिनकी नाक और नाम के लिए वह जिन्दगीभर मरा और मिटा था, उसके साथ क्या सलूक करते थे!

जिन्दगी का आखिरी तजुरबा वह करना चाहता था, इन्सानियत का। वह जानना चाहता था कि आया उसमें कुछ जान बाकी है या वह मर चुकी।

चन्दू मस्ती के साथ सीना निकालकर घूमता था। शादी कर रहा था लड़की की,—खुशखरीद [1]। यार दोस्तों की दावत की थी उसने रमला के घेर में,—छुपाकर दातादीन से। खूब शराब उड़ी और खूब रौनक रही। तमाम इन्तजाम कन्नू और रमला ने ही किया।

---

१. खुशखरीद शादी वह होती है जिसमें रुपया लेने देने का कोई सवाल नहींहोता और न किसी किस्म का बदला ही किया जाता है। समाज की कुव्यवस्थाओं के कारण परिस्थिति इतनी गम्भीर बन गई कि समाज में लड़के पर भी रुपया लिया जाता है और लड़की पर भी। खान्दानी कहलाने वाला लड़के पर रुपया लेता है, दहेज के रूप में, और गैरखान्दानी कहलाने वाला बदमाश लड़की पर रुपया लेता है, सौदा तय करके,—परन्तु छिपाना ही चाहता है वह भी। खुले आम भी यह लेन-देन चलता है समाज के कुछ लोगों में

मुनिया के चबूतरे पर खड़े होकर रमला का घेर साफ दिखलाई दे जाता था। उसने यह दावत देखी तो वहम सा होने लगा उसे कुछ-कुछ। चन्दू कई दिन से खूब खर्च कर रहा था। बीड़ी का बण्डल हर वक्त उसके कुर्त्ते की जेब में लटकता दिखाई देता था और रमला तथा कन्नू का भी रङ्ग बदला हुआ था। सिर के पट्टों में तेल और माँग कटी मुनिया ने देखी। फिर वर्दी भी तीनों की बदली हुई थी। फटे हुए कुर्त्तों के स्थान पर साफ मलमल के कुर्त्ते और धोतियाँ फाइन की।

आज चन्दू को मुनिया ने देखा तो वह मुण्ड़ा जूता पहने था, चर्र-मर्र कर रहा था वह उसकी चाल के साथ-साथ गाँव के दगड़े[1] में चलते हुए। गाल में पान भी दबा हुआ था।

मुनिया कुछ समझ न सकी इसका राज़, लेकिन उसका दिमाग बदलता जा रहा था। चन्दू का यह रूप जब दातादीन और रमधनिया ने देखा तो उनका भी माथा ठनका, और सिर चकराया, लेकिन विचार आया कि कहीं से रुपया पा गया होगा वह,—हो सकता है रमला इत्यादि के साथ कहीं जाकर लूट खसोट की हो उसने, लेकिन यह न सोच सके कि यह इस बार का डाका चन्दू ने अपनी बेटी के ही बनने वाले घर पर डाला था।

मुनिया का मन बुरी तरह सशंकित हो उठा और वह रमधनिया से अपने मन की बात कहे बिना न रह सकी। उसने स्पष्ट कह दिया अकेले में रमधनिया को लेजाकर,—"बहू! मुझे तो दाल में काला मालूम देता है। चन्दू चाल खेल रहा है और यह रमला तथा कन्नू का जरूर कोई जाल है जिसमें चन्दू फँस गया है।"

वह बाप जिसने बच्चा पैदा करने के पश्चात् आज तक कभी बाप-पन निभाया ही नहीं, आज उसका सौदा करके उससे सुन्दर पौशाक पहनकर अपना सामाजिक स्तर ऊंचा देखने का स्वप्न देख रहा था।

"कैसा जाल?" आश्चर्य-चकित होकर रमधनिया ने पूछा।

---

१. रास्ता।

रमधनिया मेहनती थी, घर और बाहर के काम की व्यवस्था करना उसे आगया था, परन्तु आगे की बातों को परखने और जानने वाला दिमाग उसके पास नहीं था। इस तरह की बातों में उसे मुनिया का ही सहारा लेना होता था। "क्या जाल हो सकता है ननदजी ! मेरा दिल बैठा जा रहा है तुम्हारी बात सुनकर।" और रमधनिया काफी भयभीतहो उठी।

"घबराने की बात नहीं है बहू ! जो भगवान् को मंजूर है वह जरूर होगा। लेकिन कल से चन्दू, रमला और कन्नू का जो राग-रङ्ग मैं देख रही हूँ, वह खाली राग-रङ्ग नहीं है। मेरे खयाल से तो इन लोगों ने जरूर कुछ रुपया तय कर लिया है उस लड़के से, जिससे झुनिया का रिश्ता हुआ है।" बहुत गम्भीरता पूर्वक मुनिया ने कहा।

मुनिया के मुख से निकले हुए शब्द हलके नहीं होते थे। उनमें वजन था, जान थी और रमधनिया के लिए तो वह वेदवाक्य थे। कुछ समझने-सोचने का सवाल ही नहीं था उसके लिए। पूरा नक्शा खिंच गया आँखों के सामने। मलमल के कुरते और फाइन की धोती में सजा हुआ मुण्डा जूता पहने चन्दू उसकी आँखों के सामने साकार आकर खड़ा हो गया। वह मुस्करा रहा था। एक अजीब अदा थी उसके मस्कराने में। उसने मूर्ख बनाया था दातादीन को, अपनी माँ को, और लूटा था रमधनिया को, उसकी लाड़ली बेटी झुनिया को,—डाका डाला था उनके गत और भविष्य के जीवन पर।

रमधनिया शेरनी के समान तड़प उठी। उसकी आँखों की पुतलियाँ जलने लगीं, बलने लगीं। उसका श्वास-प्रवाह तीव्र होगया। उसने मुनिया के मुख पर देखा, परन्तु बोल न सकी एक शब्द भी।

लेकिन वह नहीं होने देगी यह सब कुछ,—चाहे प्राण ही क्यों न देने पड़ें उसे अपने। उसने संकल्प कर लिया मन में। फिर अपने को संभाल कर विनम्र भाव से बोली,—"ननदजी ! तुम्हारा खयाल बिलकल ठीक लग रहा है मुझे। मै पूरा-पूरा ध्यान रखूंगी कि किस तरह रुपया दिया-लिया जाता है और तुम भी मेरी मदद करना इस काम में।

रिश्ता अब हो ही चुका है। बदला नहीं जा सकता इसे।"

"रिश्ता बदलने की जरूरत नहीं है बहू! जरूरत इस बात की है कि यह लोग रुपया न पा सकें।" मुनिया ने कहा, 'बापू कहते थे कि लड़का हजारों में एक है। जरा-सा खान्दान को दाग लग गया है, उससे क्या हुआ? बाप-बेटे क्या सब एक से ही होते हैं। जब ताऊ दातादीन के चन्दू जैसी औलाद पैदा हो सकती है तो अपनी लड़की पर रुपया लेने वाले रमधनिया के बाप के घर रमधनिया भी पैदा हो सकती है,—खान्दान की आन, वह आन जिसकी आन के नीचे न जाने कितने युग युगान्तर के लगे हुए दाग दब कर हमेशा के लिए खत्म हो सकते हैं।"

रमधनिया ने मुनिया की बात गाँठ बाँधली और इस बात को उसने अपने से बाहर न जाने दिया। वैसे आजकल चन्दू भी रमधनिया से बहुत मीठी ही बातें करता था; शायद उतनी मीठी, जितनी जिन्दगी में उसने कभी नहीं की थीं उससे; उस दिन भी नहीं जब दो जीवन एक साथ मिले थे,—वह तो मौन ही रह गया सब कुछ,—इस जीवन में अविकसित,—समाप्त।

झुनिया बान बैठी, हल्दी मली गई उसके बदन पर। यौवन वैसे ही इस समय उसका निखार पर था; पीली हल्दी के बदन पर मले जाने से उसमें और दमदमाहट आगई। तमाम शरीर मानो सोने में मँढ़कर भेजा था विधाता नें।

झुनिया के हर दम मुस्कराते हुए नेत्र, एक अनोखे सौंदर्य और आकर्षण की छलछलाती हुई छटा अपने कोटरों में भरकर, मुस्करा रहे थे। विवाह की प्रसन्नता और अपने बाबा, अपनी दादी अपनी माँ से बिछोह का अपार कष्ट एक साथ आकर उसके मानस में समा गये थे। सुख और दुख का एक विचित्र समन्वय था; जिससे हृदय उमड़ता था और नेत्र आँसू छलकाते थे।

रमधनिया के घर रात को झुनिया की शादी के गीत गाये जाते

थें और दातादीन भी एक ओर घर के आँगन की बाहर वाली कच्ची दीवार से सटकर खुले में अपनी खाट बिछाकर लेटा-लेटा यह गीत सुनता और प्रसन्न होता था। ऐसे गीत दातादीन के कानों में कितनी ही बार पड़े थे परन्तु इन भुनिया की शादी के गीतों में जाने क्या मिठास भरा था कि उनका स्वर दातादीन की आत्मा को छू जाता था। भुनिया की दादी भी बहुत प्रसन्न थी।

आखिर वह दिन भी आगया जब बारात आई। एक रथ, एक मझोली और एक ताँगा बस यही थी कुल भुनिया की बारात, लेकिन दूल्हा जचीला था भुनिया का। सारा गाँव रीझ उठा देखकर। भुनिया के भाग्य की सराहना की गाँव की औरतों ने और मरदों ने भी, जिस-जिसने देखा। रोड पिचकानेवालों की संख्या भी थी, लेकिन बिल्कुल कम। गाँव के लड़के-लड़कियों को, अधिकतर भुनिया का दूल्हा पसन्द ही आया। भुनिया की एक दो सहेलियों ने जाकर भुनिया को गुदगुदाते हुए उसके दूल्हे के सौंदर्य का बखान किया,—और भुनिया खो गई जीवन की एक नवीन कल्पना में,—अनजानी, अनदेखी-सी।

बारात की चढ़त हुई, मामूली बाजे के साथ। बाजा अंगरेजी नहीं था, लेकिन एक गाँव का नफीरा वाला अच्छी नफीरी बजाता था। शादी का साकार स्वरूप खड़ा कर दिया उसने देखने और सुनने वालों के सामने।

फेरों का समय रात को नौ बजे का था। बारात जनवासे में चली गई। रामू की दुकड़िया में बारात के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। दोलड़ों [1] की बिछाई बिछवादी गई थी पहले से ही।

---

१. गाँव के लोग रजाई और गद्दों के पुराने रूअड़ को मोटा कतवा कर उसके थान बुनवाते हैं। फिर इन थानों के दो परत सी कर दोलड़े, भारी चादर के समान, तय्यार किये जाते हैं। यही दोलड़े जंगल से न्यार (जानवरों का चारा) लाने तथा वख्त-बेवख्त बिछाने और ओढ़ने के काम आते हैं।

रात को बारात के पास रोटी का बुलावा पहुँचा। पंद्रह आदमी थे बारात में जिनके लिए दातादीन ने कोटोजभ की कचौड़ी, चार-चार लड्डू और पेठे तथा आलू के साग का प्रबन्ध किया था। एक मीठी सोंठ भी बनवाई थी उसने।

चन्दू की शादी की ज्यौनार में तो दातादीन ने तश्तरियाँ कराई थीं और नाच गाने का भी प्रबन्ध किया था, पर झुनिया की शादी में वह यह सब कुछ न कर सका। करना वह नहीं चाहता था, यह बात नहीं थी,—आज झुनिया उसे लाख लड़कों से भी अधिक प्यारी थी। झुनिया जारही थी, शादी होकर पराये घर,—यही कल्पना उसे हिला देती थी, झकझोर डालती थी उसके बूढ़े जर-जर शरीर को। परन्तु वह लाचार था। पराया ही धन तो पाला था दातादीन ने।

बारात खाना खाकर जा रही थी और रात्रि ने भी अपना जाल बिछादिया था सारे गाँव पर,—चारोंओर अन्धकार ही अन्धकार। बारात जनवासे की ओर रवाना हुई तो उसके सामने-सामने दो मशालची रास्ता दिखलाते जा रहे थे।

बरातियों में खाने की लगभग सभी ने तारीफ की पर एक-दो बुरी तरह नाँक-भौं भी सकोड़ रहे थे। कुछ कहा भी उन लोगों ने, और वह दूल्हे ने भी सुना भी, लेकिन वह चुप रह गया अपना काज समझकर।

फेरों का समय निकट आया और उधर रमला तथा चन्दू में काना-फूंसी होने लगी। जनवासे के सामने चबूतरे के नीचे दीवार के सहारे अन्धेरे में दोनों खड़े बातें कर रहे थे। कन्नू चबूतरे की सीढ़ी के पास नीचे की ओर खड़ा था। इसी समय नौशा चबूतरे से नीचे उतरा और वह कन्नू के साथ रमला तथा चन्दू के पास पहुंच गया। यहाँ से चारों रमला के घेर की ओर बढ़ चले।

मुनिया और रमधनिया इसी घात में लगी चबूतरे के बाँई और मुनिया के घर की दुबारी में खड़ी यह सब कुछ देख रही थीं। रात्रि

के अन्धकार में वह चुपके से कुछ दूर के फासले पर उन चारों के पीछे पीछे हो लीं। वह रमला के घेर में पहुँचकर नीम के पेड़ के नीचे बिछी चारपाई पर बैठ गये और यहीं मुनिया के दूल्हे ने पंद्रह सौ रुपये के नोट गिनकर चन्दू को दिये।

रमधनिया का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। वह कुछ देर तो समझ ही न सकी की क्या करे। उसने देखा कि रुपया चन्दू ने सब हिफ़ाजत से अपने कुर्ते के ऊपर वाली रेशमी जाकट की जेब में रख लिया और फिर वह चारों वहाँ से बिदा हो गये। दूल्हा जनवासे की ओर चला गया और चन्दू अपने घर की तरफ। रमला और कन्नू ने वहीं नीम के ही पेड़ के नीचे लेट लगाया।

शिकार मार लिया था उन्होंने, अपार हर्ष था उनके दिल में। मस्ती के साथ फिर दोनों ने बीड़ियाँ सुलगाईं और शान से आसमान में धुआँ उड़ाते हुए एक दूसरे से बोला,—"इसे कहते हैं उस्ताद! उस्तादों पर भी हाथ साफ़ करना।"

"बस कमाल किया तुमने भी लेकिन हमने भी साथ देने में कुछ कसर नहीं रहने दी उस्ताद!" कन्नू ने कहा।

"मिल जुलकर काम करने में बड़ी ताकत होती है उस्ताद!" कह कर रमला ने संतोष का साँस लिया।

इनको यहीं छोड़ रमधनिया और मुनिया दोनों, चन्दू के पीछे लपकीं। चन्दू घर जाकर कुछ देर दातादीन के पास बैठा और फिर अपनी माँ से बातें करने लगा। इसी बीच में रमधनिया कोठे में घुस गई।

रमधनिया की नजर इस समय चन्दू की रेशमी जाकट पर थी और उसे उसके अतिरिक्त और कुछ दिखलाई ही नहीं दे रहा था।

चन्दू ने आज बहुत पी थी शराब, और उसकी आँखों में खुमार छाता जा रहा था। वह कोठे में गया तो रमधनिया अकेली ही अन्दर मिली। चन्दू को देखकर वह अपना तीयल-लागा सँवारने लगी और

एक अजीब अदा से आज उसने मुस्कराकर चन्दू की ओर देखा।

चन्दू भी मुस्कराया और बिछी हुई खाट पर बैठ गया। रमधनिया भी अवसर देखकर उसके पास जा बैठी और प्यार भरे मीठे स्वर में बोली,—"अपनी मुनिया की शादी का तो आखिर ख्याल आया तुझे।" और फिर उसी इठलन के साथ चन्दू का हाथ अपने हाथ में लेते हुए बोली,—"लेट जाओ जरा। आज बहुत काम किया है। थक गये मालूम से देते हो।"

"हां थक गया मुनिया की माँ।" रमधनिया की ओर देख कर कुछ लड़खड़ाती-सी जबान से चन्दू बोला। उसे नशा तेज होता जा रहा था और वह वास्तव में लेट गया,—खो गया शराब की खुमारी में।

रमधनिया ने एक चादर उढ़ादी चन्दू को। कुछ देर में चन्दू और ज्यादा नशे में होकर सो गया और अब उसे पता नहीं था अपना।

रमधनिया ने मौका ठीक समझ उसकी जाकट की जेब से पंद्रह सौ का पंद्रह सौ रुपया निकाल लिया और चुपके से कोठे से निकल कर उसका बाहर से कुन्दा बन्द करके ताला लगा दिया।

मुनिया बाहर दगड़े[1] में खड़ी इन्तजार कर रही थी रमधनिया का। काफी देर हो गई थी उसे। थककर वह पासवाले कुए की भन पर बैठ गई थी। अँधेरे में रमधनिया मुनिया को पहचान कर उस ओर बढ़ी तो मुनिया भी उसे पहचानकर बोली,—"बहू!"

"हाँ ननद जी!" रमधनिया ने धीरे से कहा।

"काम हो गया।" मुनिया ने पूछा।

"पूरी तरह।" रमधनिया बोली।

और दोनों तेजी के सास मुनिया के घर की ओर लपक कर चल दीं। सीधी घर पहुँची तो रामू खाट पर लेटा हुआ हुक्का पी रहा था। दोनों को आती देख आश्चर्य चकित होकर उसने पूछा,—"क्या बात है मुनिया?"

---

१. रास्ता।

मुनिया ने होठों पर ऊँगली रखकर अपने बाप को चुप रहने का संकेत किया और फिर कोठे में ले जाकर उसे दो शब्दों में सब कुछ बतलाते हुए नौशे को जनवासे से वहाँ बुला लाने के लिए भेज दिया।

रामू ने यह काम आनन-फानन में किया। जितनी देर में रामू नौशे को बुलाकर लाया उतनी ही देर में मुनिया झुनिया को अपने घर बुला लाई।

रमधनिया ने यहाँ दिये की रौशनी में अपने दामाद का मुँह देखा और देखती ही रही बहुत देर तक। फिर टीका किया उसने और मुनिया ने पास में लाकर झुनिया को खड़ा कर दिया।

"यह सास है तेरी" मुनिया ने कहा।

दूल्हा लज्जा से सकुचा कर झुक गया।

और फिर रमधनिया ने उसके वही पंद्रह सौ रुपये उसके हाथ में देते हुए कहा,—"बेटा! यह तेरी ही कमाई का रुपया तुझे टीके, जहेज और आगे वाले नेगों[1] में दे रही हूँ। मेरे पास मेरी झुनिया ही है सब कुछ। मेरा खजाना है यह। तू इसे लेजा बेटा! नहीं तो यहाँ बड़े-बड़े डकैत बसते हैं। तू अभी रात को ही चला जा।"

लड़के ने सिर झुकाकर सास का आदेश पालन किया। अपने बहलवान को चुपके से रथ जोत कर गाँव से बाहर मिलने के लिए कहकर वह स्वयँ गाँव से बाहर पहुँच गया। मुनिया और रमधनिया भी झुनिया को वहीं लेकर जा पहुँची।

झुनिया रोने लगी तो मुनिया ने समझाते हुए कहा,—"बेटी! रोने का समय नहीं है, पर याद रख, तेरी बूआ तुझे किसी तरह की तकलीफ में नहीं देख सकेगी कभी।" और रथ हँक गया,—एक क्षण के लिए मौन खड़ी रह गईं मुनिया और रमधनिया।

---

१. समय-समय पर रस्म रिवाजों पर लड़की को भेजे जाने वाला सामान।

इस तमाम काम में काफी समय लग गया। पूरी रात्रि निकल गई पर कानों-कान भी कोई कुछ न भाँप सका। लेकिन कहाँ तक छुपने वाली बात थी यह ?

रात ढली और चन्दू का खुमार टूटा। वह इधर-उधर हिला तो रमधनिया नहीं थी वहाँ। पन्द्रह सौ रुपये जेब में लिए हुए वह इस समय एक धनवान व्यक्ति था। उसने सोचा कि जेब से निकाल कर उन्हें एक बार गिनकर देखे; लेकिन ज्यों ही उसका हाथ अपनी जेब में गया, जेब खाली थी। उसमें एक भी रुपया नहीं था। वह धक्क से रह गया।

क्रोध से उसका चेसरा तमतमा उठा और जी चाहा कि वह रमधनिया को कच्चा ही चबा जाय। तुरन्त उठकर कोठे के दरवाजे पर आया तो वह बाहर से बन्द था।

रात भर दातादीन भी परेशान ही रहा, और परेशान चन्दू की माँ भी। क्योंकि रमधनियाँ, झुनिया और चन्दू का कहीं पता नहीं था। चन्दू कोठे में ताले के अन्दर बन्द पड़ा शराब के नशे में सो रहा था, इसका उन्हें क्या पता ?

दातादीन कुछ समझ न सका, परन्तु यह वह अवश्य समझ रहा था कि कुछ गहरा राज था। उसे सामने से रमधनिया आती दिखलाई दी तो उसकी कुछ जान में जान आई।

कोठे के अन्दर से किवाड़ों की खड़खड़ाहट सुनी और रमधनिया के दरवाजा खोलने पर चन्दू वहाँ से निकला तो रङ्ग ही बदल गया घर का। चन्दू कड़क कर बोला,—"रुपया कहाँ है मेरी जेब का ?"

"रुपया ! जिसका वह रुपया था उसे दे दिया। झुनिया को बेचने का तुझे कोई हक नहीं।" स्थिरता के साथ रमधनिया ने कहा और दातादीन तथा चन्दू की माँ ने भी सुना।

चन्दू पागल की तरह बौखला उठा। उसने कसकर एक लात मारी रमधनिया के और रमधनिया बल खाकर जमीन पर गिर पड़ी।

दातादीन बुढ़ापे में भी बबकारता हुआ उस ओर बढ़ा और चन्दू को उसने रमधनिया की ओर बढ़ने से रोकने का प्रयास किया लेकिन चन्दू इस समय इंसान नहीं रह गया था। उसने अपने बाप को भी कस कर लात मारी। वह भी लड़खड़ा कर गिरा और सँभाल न सका इस मजबूत दानव के प्रहार को, उसकी पसलियाँ टूट गईं।

दो-चार हिचकियाँ लीं और दातादीन का प्राण पखेरू उड़ गया।

एक विचित्र काण्ड हो गया बात-की-बात में।

लेकिन चन्दू भागा नहीं। पुलिस चन्दू को पकड़ कर ले गई। दातादीन की लाश को कंधा भी न दे सका उसका इकलौता बेटा।

चंदू की माँ और रमधनिया ने दातादीन की अरथी और चंदू को हथकड़ियों में जकड़ कर इस घर से निकालते देखा,—और देखती ही रहीं। साथ न दे सकी दोनों में से एक भी।

परंतु रमधनिया को संतोष था कि दातादीन अपनी पोती की शादी करके मरा, उसकी इच्छा पूरी हुई।

रमधनिया खुश थी,—उसने एक काम किया, एक फर्ज निभाया।

आज उस पर कर्ज नहीं था और उसने अपनी झुनिया को भी किसी साहूकार के कर्ज से नहीं दबने दिया।